VAC-8

# संवैधानिक मूल्य और मौलिक कर्तव्य

# Constitutional Values and Fundamentel duties


राजनीति विज्ञान विभाग

समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani

हैलो हल्द्वानी

91.2 FM

**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**

**तीनपानी बाईपास मार्ग**

**ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139**

**नैनीताल, उत्तराखण्ड**

**Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in**

## पाठयक्रम समिति

| | |
|---|---|
| **प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे**<br>**निदेशक – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल | **प्रो0 एम0एम0 सेमवाल**<br>राजनीति विज्ञान विभाग<br>केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल |
| **प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी**<br>राजनीति विज्ञान विभाग<br>श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश | **प्रो0 सतीश कुमार**<br>राजनीति विज्ञान विभाग<br>इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली |
| **डॉ0 सूर्य भान सिंह**<br>**(विशेष आमंत्रित सदस्य )**<br>एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान<br>इलाहबाद विश्वविद्यालय | **डॉ घनश्याम जोशी**<br>असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल |
| **डॉ लता जोशी**<br>असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल | **आरूशी**<br>असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल |

## पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

| | |
|---|---|
| **डॉ0 सूर्य भान सिंह**<br>एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान<br>इलाहबाद विश्वविद्यालय | **डॉ. लता जोशी**<br>असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल |

| **इकाई लेखक** | **इकाई संख्या** |
|---|---|
| **डॉ. लता जोशी,** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल. | **1, 7** |
| **शुभांकर शुक्ला ,** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल. | **2,8** |
| **आरूशी,** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल. | **3-4** |
| **सुमित सिंह,** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल. | **5,10** |
| **प्रमोद चमियाल,** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल. | **6,9** |

**आई.एस.बी.एन. ---------- ISBN :978-93-84433-79-6**

**कापीराइट @** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष -2012

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :----------

**संस्करण :**2020, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

**सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

**मुद्रित प्रतियां**

## अनुक्रम

**संविधान के मूल्य और मौलिक कर्तव्य** **VAC-08**


| इकाई संख्या | इकाई का नाम | पृष्ठसंख्या |
|---|---|---|
| इकाई 1 | संविधान का परिचय और संविधान सभा | 1-17 |
| इकाई 2 | भारतीय संविधान का दर्शन | 18-35 |
| इकाई 3 | सविधान की प्रस्तावना एवं मूल्य | 36-50 |
| इकाई 4 | संविधान की विशेषताएँ और मूल्य | 51-64 |
| इकाई 5 | भारत में संघात्मक व्यवस्था | 65-78 |
| इकाई 6 | भारत में संसदीय शासन प्रणाली | 79-90 |
| इकाई 7 | भारतीय संविधान में मूल अधिकार | 91-105 |
| इकाई 8 | भारतीय संविधान में मूल कर्तव्य | 106-116 |
| इकाई 9 | भारतीय संविधान में राज्य के नीति-निदेशक तत्त्व | 117-136 |
| इकाई 10 | भारतीय संविधान में लोकतंत्र | 137-150 |

# इकाई-1 भारतीय संविधान का परिचय : अर्थ, परिभाषा, महत्व और संविधान सभा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 संविधान का अर्थ , परिभाषा और महत्त्व

1.3 संविधान का महत्त्व

1.4 भारतीय संविधान की विकास : औपनिवेशिक काल में संविधान का विकास

1.5 संविधान निर्माण और संविधान सभा

1.5.1 क्रिप्स मिशन

1.5.2 कैबिनेट मिशन

1.5.3 माउंटबेटन योजना

1.5.4 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम

1.6 संविधान सभा का गठन , संविधान निर्माण और संविधान सभा की कार्य प्रणाली

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.0 प्रस्तावना

आज के समय में शिक्षार्थियों को अपने देश को जानने व समझने की जरुरत है , जिसमें समकालीन भारत के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टिकोंण , राजनीतिक पहलु, संवैधानिक दायित्व व मूल्य , अधिकार व कर्तव्य की समझ विकसित करने की आवश्यकता है । भारतीय संविधान के मूल्यों व दर्शन को समझने के लिए पहले यह जानना होगा कि संविधान क्या है? भारतीय संविधान का विकास कैसे हुआ ? और संविधान को क्यूँ पढ़ा जाना चाहिए। इसका क्या महत्व है।

प्रथम इकाई में हम उपरोक्त बातों को जानने का प्रयास करेंगे। इसके साथ संविधान सभा के विषय में विस्तार से विचार करेंगे।

## 1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1 संविधान का अर्थ समझ सकेंगे।

2 संविधान का महत्व समझ सकेंगे।

3 संविधान सभा के विषय में जानेंगे।

## 1.2 संविधान की परिभाषा और अर्थ

संविधान की आवश्यकता क्यों है ? इसके महत्व को इस बात से भी समझा जा सकता है कि आज सभी विकसित देशों के पास अपना संविधान है। संविधान हमेशा उस देश के नागरिकों के हित में होता है। यह राजनीतिक ढांचा प्रदान करता है , एक संतुलित सरकार स्थापित करता है, अधिकार प्रदान करता है और लोकतान्त्रिक मूल्यों और मानवाधिकारों को कायम रखता है। हर संविधान कुछ मूल्यों को दर्शाता है जो राजनीतिक व्यवस्था में मूल (कोर) का निर्माण करते हैं। संवैधानिक मूल्य न केवल सरकार बल्कि नागरिकों और समाज को भी बड़े पैमाने पर मार्गदर्शन कराने का काम करते है। संवैधानिक मूल्य भारत के संविधान में हर जगह प्रतिविम्बित होते हैं, लेकिन इसकी प्रस्तावना में मूलभूत मूल्यों तथा दर्शन को समाहित किया गया है। इसमें संप्रभुता, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, लोकतंत्र, गणराज्य, न्याय (सामाजिक, आर्थिक,राजनीतिक) ,स्वतंत्रता समानता और समता जैसे

मूल्यों को आत्मसात किया गया है। हर नागरिक का कर्तव्य है कि संवैधानिक मूल्यों का सम्मान करे।

हर देश के संविधान का अपना एक दर्शन होता है, मतलब वे आदर्श जिनसे संविधान प्रेरित हुआ हो । इसमें वे नीतियों भी शामिल होती हैं जिन पर संविधान और शासन प्रणाली आधारित है। संविधान के दर्शन का मतलब संविधान में उल्लेखनीय देश के दर्शन के मूल्य व आदर्शों से है जैसे भारतीय संविधान स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र व सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध है । इस सबके साथ उसके दर्शन को शांतिपूर्ण तथा लोकतान्त्रिक तरीके से अमल किया जाये। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता, अल्पसख्यकों के अधिकारों का सम्मान, धार्मिक समूहों के अधिकार सार्वभौम मताधिकार, संघवाद आदि का भी समावेश हुआ है। संविधान के दर्शन का सर्वोत्तम सार संक्षेप में संविधान की प्रस्तावना में वर्णित है।

दुनिया के किसी भी देश में किसी भी प्रकार की शासन प्रणाली में बुनियादी नियमों की आवश्यकता होती है। यह बात हर संगठन पर लागू होती है, हर संगठन के नियम कानून होते है । संविधान की आवश्यकता को मानते हुए जैलीनेक ने लिखा है कि " संविधान के बगैर राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। संविधान के आभाव में राज्य, राज्य न होकर एक प्रकार की अराजकता होगी"

मानव शरीर के सन्दर्भ में संविधान के आंग्ल पर्यायवाची शब्द 'कॉन्स्टीट्यूशन' का प्रयोग मानव शरीर के ढांचे व उसकी बनावट के लिए किया जाता है। जिस प्रकार मानव शरीर के सन्दर्भ में कॉन्स्टीट्यूशन का अर्थ शरीर के ढांचे व गठन से होता है, उसी प्रकार नागरिकशास्त्र में, कॉन्स्टीट्यूशन का तात्पर्य राज्य के ढांचे तथा संगठन से होता है।

## संविधान की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों द्वारा संविधान की परिभाषा अलग-अलग प्रकार से की गयी है, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं:

लीकाक: "किसी राज्य के ढांचे को उसका संविधान कहते हैं।"

फाइनर : "संविधान मूलभूत राजनीतिक संस्थाओं की एक व्यवस्था है।"

ब्राइस : "किसी राज्य अथवा राष्ट्र के संविधान का निर्माण उन नियमों अथवा कानूनों के योग से होता है जो सरकार के स्वरूप तथा सरकार के प्रति नागरिकों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं।"

गिलक्राइस्ट का कथन है कि "संविधान उन लिखित या अलिखित नियमों अथवा कानूनों का समूह होता है ,जिनके द्वारा सरकार का संगठन, सरकार की शक्तियों का विभिन्न अंगों में वितरण और इन शक्तियों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं।"

प्रो डायसी के अनुसार, "संविधान उन समस्त नियमों का संग्रह है जिनका राज्य की प्रभुत्व सत्ता के प्रयोग अथवा वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।"

विद्वानों द्वारा संविधान शब्द की जो परिभाषा की गयी है, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी राज्य के संविधान द्वारा प्रमुख रूप से निम्नलिखित तीन बातें निश्चित की जाती हैं : (1) व्यक्ति-व्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध, (2) व्यक्ति और राज्य अर्थात् शासक और शासित के पारस्परिक सम्बन्ध, (3) सरकार के संगठन, उसके ढांचे और सरकार के विविध अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों को निश्चित करने का किया जाता है।

प्रारंभ से ही मनुष्य के सामने तीन प्रश्न रहे हैं –

क्या सरकार जरुरी है? सरकार का सबसे अच्छा स्वरुप क्या है? हम सरकार को निरंकुश बनने से कैसे रोक सकते है?

इन प्रश्नों का उत्तर संवैधानिकता के विचार का मूल है और फिर संवैधानिक कानून। संविधान सिद्धांतों और प्रथाओं के उस निकाय को संदर्भित करता है जो राज्य के संगठन का आधार बनाते हैं। यूनानी दार्शनिक अरस्तू के अनुसार " मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, एक मनुष्य या परिवार अलगाव में जीवित नहीं रह सकता है। मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह खुद को समुदाय या समाज से जोड़ कर रखे। जनसँख्या वृद्धि से इन समाजों का विकास हुआ और व्यवस्था बनाये रखने के लिए नियम-कानून की जरुरत पड़ी। इसी जरुरत से कानून और सरकार की जरुरत पड़ी।

## 1.3 संविधान का महत्त्व

1 संविधान बुनियादी नियमों का एक ऐसा समूह उपलब्ध करता है जिससे समाज के सदस्यों में एक न्यूनतम समन्वय और विश्वास बना रहे।

2 समाज में निर्णय लेने की शक्ति किसके पास होगी यह भी संविधान तय करता है कि सरकार कैसे तय करता है कि सरकार कैसे निर्मित होगी।

3 संविधान ही सरकार को ऐसी क्षमता प्रदान करता है जिससे वह जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सके और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए उचित परिस्थितियों का निर्माण कर सके।

4 संविधान देश का आधारभूत कानून होता है जो विधि का शासन लागू करता है।

5 संविधान सर्वोच्च कानून होता है यदि सरकार का कोई निर्णय व नियम इसके अनुरूप न हो तो उसे असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है।

6 सरकार की शक्तियों को सीमित करता है और सरकार को शक्तियों के दुरूपयोग से भी रोकता है।

7 संविधान लोगों की बदलती आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में सक्षम है।

## 1.4 भारतीय संविधान का विकास : औपनिवेशिक काल में संविधान का विकास

भारतीय संविधान जनता के प्रतिनिधियों के समूह के विचार-विमर्श व गहन शोध से बनकर तैयार हुआ। जिसमें भारतीय मूल्य व दर्शन को ध्यान में रखकर सविधान का निर्माण किया गया। भारतीय संविधान के दर्शन , मूल्य व तमाम पहलुओं को समझने के लिए संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है।

भारत के संविधान के ऐतिहासिक विकास के विषय में जानकारी भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने से पहले पारित कई नियमों और अधिनियमों से लगायी जा सकती है। इतिहास में कई घटनाओं की श्रृंखला के फलस्वरूप भारत के संविधान का विकास हुआ। यहाँ की विविध संस्कृति, भूभाग और लोग एक विविधता भरे देश को बनाते हैं , इसलिए संविधान बनाते हुए इन सब बातों का ध्यान रखा जाना अपने आप में चुनौती वाला काम था। जिससे इस विविधता से भरे देश को एक मजबूत संविधान दिया जा सके। भारत में कई प्रणालियों का जन्म ब्रिटिश शासन के वजह से हुआ है तो ओपनिवेशिक शासन के दौरान के विभिन्न अधिनियमों को जानना अनिवार्य हो जाता है।

### रेगुलेटिंग एक्ट 1773

बक्सर के युद्ध (1764) के बाद ईस्ट इण्डिया कंपनी ने बंगाल, उड़ीसा और बिहार में राजस्व एकत्र करने का अधिकार प्राप्त किया। इसके कारण कंपनी के कर्मचारियों द्वारा मनमाने तरीके से सम्पत्ति इकठ्ठा की जाने लगी जिस पर ब्रिटेन की संसद में सवाल उठे। ब्रिटिश सरकार द्वारा एक समिति बनके कंपनी की जाँच की गयी और अपनी रिपोर्ट में कंपनी पर सरकारी नियंत्रण लागू करने और और को

विनियमित करने के लिए सुझाव दिया गया यह एक्ट भारत में प्रशासनिक व्यवस्था लागू करने के लिए लाया गया था। इस एक्ट में पहली बार ब्रिटिश मंत्रिमंडल को भारतीय मामलों पर नियंत्रण रखने का अधिकार दिया गया। कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना की गयी जिसमें मुख्य न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीश शामिल थे व इसने केन्द्रीय प्रशासन की नींव पड़ी।

## पिट्स इंडिया एक्ट 1784

यह अधिनियम रेगुलेटिंग एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए पारित किया गया। इस एक्ट के तहत कंपनी के स्वामित्व वाले क्षेत्रों को "भारत में ब्रिटिश संपत्ति" कहा जाता था और इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार और कंपनी द्वारा भारत में ब्रिटिश संपत्ति का दोहरा नियंत्रण हुआ।

**1813 का चार्टर अधिनियम** – नेपोलियन की कॉन्टिनेंटल सिस्टम ( जिसमें यूरोप में फ्रांसिसी सहयोगियों में ब्रिटिश माल के आयत पर रोक लगा दी ) के कारण ब्रिटिश व्यापारियों को नुकसान उठाना पड़ा। अतः उन्होंने सरकार से एशिया में व्यापार में हिस्से की मांग की। इस पर कम्पनी ने अपनी असहमति जाहिर की परन्तु आख़िरकार ब्रिटिश व्यापारियों को 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा भारत में व्यापार करने की अनुमति मिल गयी। चीन के साथ व्यापार और चाय व्यापार में ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार रखा गया। इस अधिनियम के तहत मिशिनिरियों को भारत में आने दिया गया और धर्मान्तरण करवाने की अनुमति दी गयी। भारत में एक विशप की नियुक्ति भी की गयी।

## 1833 का चार्टर अधिनियम –

इस एक्ट ने बंगाल के गवर्नर-जनरल को भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया। इस तरह से भारत के प्रशासन का केन्द्रीकरण हुआ , विलियम बेंटिंग पहला गवर्नर जनरल बना। भारत के गवर्नर-जनरल के पास अब सारी विधायी शक्तियां थी और बंबई मद्रास प्रान्त के गवर्नर के पास कोई विधायी शक्ति नहीं रही। इस एक्ट ने सिविल सेवकों के लिए खुली प्रतियोगिता को प्रारंभ किया जिसमें भारतीय भी शामिल हो सकते थे। गवर्नर-जनरल की परिषद् के चार सदस्य थे जो भारत के लिए कानून बनाने , कानून में संसोधन करने , निरस्त करने की शक्ति रखते थे। कानूनों को व्यवस्थित रूप देने के लिए (संहिता बनाने) भारतीय विधि आयोग की स्थापना की गयी जिसके पहले अध्यक्ष लार्ड मैकाले बने ।

## 1853 का चार्टर एक्ट –

इस एक्ट ने आज के संसदीय स्वरूप की नींव के रूप में काम किया साथ ही भारतीय सिविल सेवा को भी जन्म दिया। गवर्नर जनरल की परिषद के विधायी और कार्यकारी परिषदों को अलग किया गया जिसमें छ:- छ: सदस्य नियुक्त किये गये। गवर्नर जनरल के लिए नई विधान परिषद् का गठन किया गया जिसे भारतीय विधान परिषद् का नाम दिया गया। इस एक्ट के द्वारा स्थानीय सरकार को प्रारंभ करने का काम किया गया और विधान परिषद में भी प्रतिनिधित्व दिया गया।

## भारत सरकार अधिनियम 1858 –

1857 के विद्रोह से ब्रिटिश सरकार को कंपनी की नीतियों पर संदेह होने लगा और इस विद्रोह का कारण भी कंपनी को ही माना गया। इस एक्ट के द्वारा भारत में ब्रिटिश क्षेत्रों का संप्रभु ब्रिट्रेन के ताज (ब्रिट्रेन की महारानी) को बना दिया गया। इस अधिनियम द्वारा भारत के राज्य सचिव पद का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम ने यह बदलाव भी किया कि भारत के गवर्नर-जनरल को वायसराय बनाया गया। पहले वायसराय लार्ड कैनिन बने।

## भारत परिषद् अधिनियम 1861

भारत परिषद् अधिनियम 1861 में पोर्टफोलियो प्रणाली प्ररम्भ की गयी जिसमें हर सदस्य को एक विशेष विभाग का मंत्रिपद (पोर्टफोलियो) सौंपा गया। विधायी कायों के लिए गवर्नर जनरल की परिषद् में 6-12 अतिरिक्त सदस्यों को जोड़ा गया। जिसे गवर्नर जनरल द्वारा 2 वर्ष के लिए मनोनीत किया जाता था। इस परिषद् में भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को भी रखा गया। (तीन भारतीय सदस्यों में बनारस के राजा, पटियाला के राजा और सर दिनकर राव थे) गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद् का विस्तार भी किया गया और 1 सदस्य को शामिल किया गया सदस्य बनने के लिए न्यायविद होना जरुरी था। 1833 के चार्टर एक्ट में जो शक्तियां मद्रास और बंबई प्रान्त से छीन ली गयी थी। 1861 के अधिनियम द्वारा पुन: दे दी गयी। अब कलकत्ता की विधान परिषद् भारत के लिए कानून पारित करने की शक्ति रखती थी।

## भारत परिषद् अधिनियम 1909

इस अधिनियम को मार्ले-मिन्टो सुधार भी कहा जाता है। इस अधिनयम में चुनाव प्रणाली के सिद्धांत को स्वीकार किया। इस अधिनियम ने मुस्लिम समुदाय को विशेष रियायतों के साथ प्रतिनिधित्व दिया। सरकार इस तरह का लालच दे कर राष्ट्रवाद को कम करना चाहती थी। इस एक्ट से विधान परिषद् में विचार विमर्श की संस्कृति बड़ी। अब विधान परिषद् बजट या लोकहित के विषय में संकल्प प्रस्ताव पारित करके प्रशासन को प्रभावित कर सकती थी।

## भारत शासन अधिनियम 1919

भारत के संवैधानिक विकास में भारत शासन अधिनियम 1919 की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान कांग्रेस सक्रिय हो गयी और उसने स्वराज के लिए संघर्ष शुरू कर दिया इस संघर्ष को स्वराज आन्दोलन कहा गया। तभी ब्रिटिश सरकार ने प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों को शामिल करने की घोषणा की जिससे ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी सरकार को स्थापित किया जा सके। उस समय भारत के राज्य सचिव मोंटेग्यू और गवर्नर जनरल चेम्सफोर्ड थे, इन्हें ही ब्रिटेन सरकार की नीति के क्रियान्वयन के लिए रिपोर्ट तैयार करनी थी जो भारत शासन अधिनियम 1919 के रूप में सामने आई । आठ प्रान्तों (असम, बंगाल, बिहार और उड़ीसा , मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त, बंबई, मद्रास और पंजाब,) में द्वैध शासन लागू किया गया । एक नए अधिकारी 'भारतीय उच्चायुक्त' की नियुक्ति की गयी जो यहाँ के कार्य की देखरेख करे। गवर्नर- जनरल की कार्यकारी में 3 भारतीयों को नियुक्ति मिली जो विधि, श्रम, शिक्षा,स्वास्थ्य व उद्योग जैसे विभागों को देखते थे । विषयों को केन्द्रीय व प्रांतीय भागों में बांटा गया राष्ट्रीय महत्व के विषय केंद्र सूची में डाले गये जिस पर गवर्नर-जनरल कानून बना सकता था । प्रांतीय सूची के विषयों पर गवर्नर कार्यकारी तथा विधानमंडल की सहमती पर कानून बनता था। इस एक्ट के द्वारा केन्द्रीय विधानसभा का कार्यकाल 3 वर्ष किया गया , जिसे गवर्नर-जनरल बढ़ा सकता था । वायसराय को विधायिका को संबोधित करने का अधिकार था । उसे बैठकों को आहूत करने , स्थगित करने या विधान मंडल को निरस्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ ।

1919 के भारत शासन अधिनियम की समीक्षा करने और संवैधानिक सुधार का अध्ययन करने के लिए साइमन कमीशन भारत आया । इस कमीशन में संसद के सात सदस्य थे जिसकी अध्यक्षता सर जन साइमन कर रहे थे। भारत के लोगों ने इसका कड़ा विरोध किया।क्योंकि इस आयोग में एक सदस्य भी भारतीय नहीं था। इसका विरोध कांग्रेस, अन्य नेताओं के साथ-साथ आम जनता ने भी किया और कई विरोध प्रदर्शन हुए । लाहौर में एक प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए पुलिस की मार के कारण ही लाला लाजपत राय गंभीर रूप से घायल हुए और कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गयी ।

आयोग ने 1930 में द्वैध शासन प्रणाली को हटाने का प्रस्ताव दिया और भिन्न प्रान्तों में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना का सुझाव दिया। साइमन कमीशन के सुझाव से ही भारत सर्कार अधिनियम 1935 की रह प्रसस्थ हुई । जिसने वर्तमान भारतीय संविधान के कई हिस्सों में अधर के रूप में काम किया । आयोग के आने से भर्ती नेताओं और आम जनता को स्वतंत्रता के प्रति और गति तेज करने का बल मिला।

## भारत शासन अधिनियम 1935

यह अधिनयम भारत में संवैधानिक सरकार के विकास में मिल का पत्थर माना जाता है। यह अधिनियम अब तक के अधिनियमों में सबसे लम्बा अधिनियम था । इसे ब्रिटेन की संसद द्वारा अधिनियमित किया गया, जुलाई 1935 को शाही स्वीकृति मिली और 1 अप्रेल 1937 से लागू किया गया। यह अधिनियम साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर, गोलमेज सम्मेलनों की सिफारिशों, ब्रिटेन की सरकार द्वरा प्रकाशित श्वेत पत्र और संयुक्त प्रवर समितियों पर आधारित था। इस अधिनियम ने जिस शासन प्रणाली की व्यवस्था की वो निम्न प्रकार से थी -

**प्रांतीय स्वायत्तता** : इस अधिनियम में पेइसंघ की स्थापना की गयी जिसकी इकाइयाँ थी प्रान्त और देशी रियासतें। देशी रियासते चाहे तो परिसंघ में मिल सकती थी। हालाँकि ऐसा नहीं हो पाया । इस अधिनियम ने प्रान्तों को पर्याप्त स्वायत्ता दी विधायी शक्तियों को प्रांतीय और केन्द्रीय विधान मंडल के बीच विभाजित किया गया अब प्रान्त प्रशासन की स्वतंत्र इकाई थे। अब प्रान्त की कार्यपालिका गवर्नर/सम्राट की ओर से शक्ति का प्रयोग करती थी। कुछ विषयों में गवर्नर के पास विशेषाधिकार थे ऐसे में गवर्नर,मंत्रिमंडल की सलाह के बिना कार्य करता था।

**केंद्र में द्वैध शासन-** संघ सूची के विषयों को दो भागों आरक्षित व हस्तांतरित में बांटा गया। केंद्र में कार्यपालिका शक्ति गवर्नर-जनरल के पास थी । इस अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल अपने विवेक और परामर्शदाताओं की मदद से प्रति रक्षा, विदेश कार्य, चर्च आदि कार्य करता था। इन कार्यों के अलावा गवर्नर जनरल को मत्री परिषद् की सलाह से कार्य करने होते थे ।इन विषयों पर भी गवर्नर मंत्रिपरिषद द्वारा दी गयी सलाह को नहीं मानने का अधिकार रखता था।

विधान मंडल - केन्द्रीय विधान मंडल के दो सदन थे। संघीय विधान सभा और राज्यों की परिषद् । दोनों सदनों में रियासतों के प्रतिनिध भी थे। छ : प्रान्तों बंगाल, मद्रास, बंबई, असम और संयुक्त प्रान्त में द्विसदनीय विधान मंडल शुरू हुए। ऐसा नहीं था की यह प्रभुत्व संपन्न थे , क्योंकि केंद्रीय विधानमंडल द्वरा पारित विधेयक को गवर्नर जनरल तो वीटो कर सकता था साथ ही सम्राट भी वीटो कजर सकता था। इसी प्रकार के बंधन प्रांतीय विधान मंडलों पर भी लगाये गये थे ।

## केंद्र व प्रान्त के बीच विधि शक्तियों का बंटवारा -

यह बटवारा तीन प्रकार से किया गया था। जिसमें पहली सूची परिसंघ सूची थी जिस पर संघ को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त थी। विदेश,मुद्रा, सेना, जनगणना जैसे विषय इस सूची में शामिल थे। प्रांतीय सूची पर प्रांतीय विधान मंडल कानून बना सकते थे। इसके अंतर्गत पुलिस, प्रांतीय लोकसेवा

और शिक्षा जैसे विषय सम्मिलित थे। एक सूची समवर्ती सूची थी जिस पर दोनों ही कानून बना सकते थे, दंड विधि, सिविल प्रक्रिया , विवाह और विवाह- विच्छेद, मध्यस्थ इसके विषय थे।

## संघीय अदालत -

दो अलग अलग प्रान्तों, केंद्र और प्रान्तों के बीच विवाद को निपटने के लिए दिल्ली में संघीय अदालत की स्थापना की गयी। जिसमें 1 मुख्य और 6 अन्य न्यायाधीश थे ।

इस अधिनियम ने पहली बार प्रत्यक्ष चुनाव की शुरुआत हुई। इस अधिनियम के तहत भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना हुई व संघीय रेलवे प्राधिकरण बनाया गया। 1929 के साइमन कमीशन में 'डोमिनियन प्रस्थिति' देने की बात की गयी थी परन्तु इस अधिनियम में इनका कोई जिक्र नहीं था। यह अधिनियम इतना महत्वपूर्ण था कि स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधान में प्रतिस्थापित किया गया। परन्तु इसके पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था के कारण राष्ट्रीय एकता के निर्माण में बाधाएं आई ।

## 1947 का भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम

यह अधिनियम भारतीयों के लम्बे संघर्ष का परिणाम था यह अधिनियम 5 जुलाई को संसद द्वारा पारित किया गया था व 18 जुलाई 1947 को इसे शाही स्वीकृति मिली। यह अधिनियम माउंटबैटन द्वारा तैयार किया गया। इस अधिनियम तहत ब्रिटिश सरकार से भारतीयों के सत्ता हस्तांतरित होनी थी । भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के पालन में भारत शासन अधिनियम 1935 का भारत और पाकिस्तान (पूर्वी व पश्चिमी) में अनुकूलन आदेशों से संशोधित किया जिससे दोनों डोमिनियन में संविधान बनाने तक व्यवस्था हो सके।

1947 तक भारत ब्रिटिश नियंत्रण में था परन्तु इस अधिनियम ने स्थिति को बदल दिया और 15 अगस्त 1947 से भारत अधीनस्थ राज्य बन गया। देशी रियासतों पर ब्रिटिश सम्राट की प्रभुता और जनजातीय क्षेत्रों से संधि भी समाप्त हो गयी । ब्रिटिश सरकार और संसद का भारत के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं रहा और राज्यों के सचिव पद को भी समाप्त कर दिया गया। दोनों डोमिनियन के गवर्नर-जनरल संवैधानिक अध्यक्ष हो गये और संवैधानिक अध्यक्ष ही मंत्रियों की सलाह पर कार्य करते थे। अब दोनों डोमिनियन की संविधान सभा ने ही संविधान निर्माण के साथ-साथ विधायी कार्य भी किया । इस अधिनियम ने रियासतों को स्वतंत्र रहने या किसी संप्रभु में शामिल होने के लिए स्वतंत्र रखा ।

## 1.5 संविधान सभा संविधान निर्माण

लोकतंत्र में नागरिकों और सरकार दोनों को कुछ बुनियादी नियमों का पालन करना होता है। ऐसे नियमों का दस्तावेज संविधान कहलाता है। यह आपसी भरोसा और सहयोग विकसित करता है और यह दिशा देता है कि सरकार का गठन कैसे होगा। भारत का संविधान बहुत कठिन परिस्थितियों में बना, भारत- पाक विभाजन में जन धन का भारी नुकसान हुआ था। उसी दौरान लम्बी गुलामी के बाद आजाद हुए भारत जैसे विशाल और विविधता भरे देश का संविधान बनाना संविधान निर्माताओं के लिए चुनौतिपूर्ण था। औपनिवेशिक शासन की राजनीतिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं को जानने से संविधान निर्माताओं को नई राजनीतिक व्यवस्था /संस्था बनाने में मदद मिली। भारतीय नेताओं ने स्वतंत्रता से पहले ही काफी चिंतन - मनन और बहसें कर ली थी कि भारत का स्वरुप आजादी के बाद कैसा होगा। दुनिया भर के संविधानों का अध्ययन कर उसकी अच्छाईयां अपने संविधान में ली। भारतीय संविधान नामक दस्तावेज को लिखने का काम जिस संस्था ने किया वह चुने गये प्रतिनिधियों की सभा थी उसे संविधान सभा कहा गया। 1946 में संविधान सभा के गठन के लिए चुनाव हुआ। किसी लोकतान्त्रिक देश में संविधान-निर्माण का काम जनता के प्रतिनिधी संस्था द्वारा किया जाता है जिसे संविधान सभा कहा जाता है। भारत में संविधान सभा के विषय में विचार स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान आया। महात्मा गाँधी ने 1922 में मांग की कि भारतीय संविधान सभा का गठन भारतीयों द्वारा किया जाना चाहिए। 1928 की नेहरू रिपोर्ट में भी इस बात का जिक्र किया गया था कि भारत का भावी संविधान भारतियों द्वरा स्वयं तैयार किया जाना चाहिए। 1927 में जवाहर लाल नेहरू ने मद्रास अधिवेशन में नेहरु प्रस्ताव का ही परिवर्तित रूप पेश किया जो पुन: पारित हुआ। 19 मई 1928 में सर्वदलीय सम्मलेन ने भारत के संविधान के सिध्दांत निर्धारित करने के लिए मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समित नियुक्त की। 10 अगस्त 1928 को समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश की जिसे नेहरू रिपोर्ट कहा गया। यह भारतीयों द्वारा खुद संविधान बनाने का पहला प्रयास था। इस रिपोर्ट में संविधान के प्रारूप की रुपरेखा को शामिल किया गया था। बाद में भारतीय संविधान में नेहरू रिपोर्ट के कई प्रावधानों को सम्मिलित किया गया।

तीसरे गोलमेज सम्मलेन के बाद के श्वेतपत्र में भारत में संवैधानिक सुधारों के लिए प्रस्ताव दिए गये थे। प्रस्तावों पर विचार करने वाली समिति का मानना था कि भारत को अभी संविधायी शक्ति नहीं दी जा सकती। 1934 में कांग्रेस की कार्यकारणी ने घोषणा की कि व्यस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा संविधान तैयार किया जायेगा, पटना बैठक में यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के समय ब्रिटिश विरोध किया परन्तु बाद में परिस्थितियों से बाध्य होकर (युद्ध में भारतीयों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए ) मानना पड़ा। 1935 का भारत शासन अधिनियम ने

संविधान सभा की मांग को बल दिया। कांग्रेस ने संविधान सभा की मांग के मुद्दे पर प्रांतीय विधानमंडल के चुनाव लड़े और जीते भी। 1939 में गाँधी ने हरिजन में 'द ओनली वे' नामक लेख लिखा जिसमें संविधान सभा को एकमात्र साधन बताया जिससे लोगों की इच्छा और देशज प्रकृति को पूरा कर सकता है। 1940 में ब्रिटिश सरकार ने इस बात को माना कि भारत का संविधान भारत के लोगों द्वारा ही बनाया जायेंगे ।

### 1.5.1 क्रिप्स मिशन

क्रिप्स प्रस्ताव में पहली बार ब्रिटिश सरकार ने सविधान सभा की मांग को स्वीकार किया। 1942 में ब्रिटिश सरकार ने सर स्तेफार्ड क्रिप्स को भारत भेजा जो निम्न प्रस्तावों को लेके आये -

- युद्ध के पश्चात् भारत को डोमिनियन स्टेटस दिया जायेगा ।
- युद्ध के बाद भारत प्रभुत्व स्थिति वाला संघ बनेगा सभी प्रान्तों और देशी रियासतों से मिलकर एक संघ बनेगा, परन्तु अगर कोई रियासत इसके लिए तैयार नहीं है तो वह अपनी संवैधानिक स्थिति बनाये रखने के लिए स्वतंत्र होगा।
- भारत के संविधान के लिए संविधान सभा गठित की जाएगी , इसके सदस्य प्रांतीय विधान सभाओं के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित होंगे और रियासतों द्वारा मनोनीत होंगे।

इस प्रस्ताव पर कांग्रेस व मुस्लिम लीग दोनों ने आपत्ति जाहिर की। कांग्रेस ने स्वतंत्रता की जगह डोमिनियन स्टेटस पर सवाल उठाये। वहीँ मुस्लिम लीग ने अलग राज्य पाकिस्तान बनाने की बात की और क्रिप्स मिशन को ख़ारिज कर दिया। क्रिप्स प्रस्ताव के असफल होने के बाद दोनों दलों को एक करने के कई प्रयास हुए ,शिमला सम्मलेन किया गया जो असफल रहा। ब्रिटिश सरकार द्वारा 3 मंत्रिमंडल के सदस्यों का प्रतिनिधि मंडल भेजा गया जिसके हाथ भी असफलता लगी। 16 मई 1946 को प्रतिनिधिमंडल ने एक प्रस्ताव की घोषणा की जिसे कैबिनेट मिशन योजना के नाम से जाना जाता है । इस प्रस्ताव के माध्यम से भारत का संघ बनाने, विभाजन करने के मुद्दे पर समझौता करवाने का प्रयास किया गया ।

### 1.5.2 कैबिनेट मिशन

ब्रिटिश सरकार ने भारत को सत्ता हस्तांतरण पर विचार करने के लिए फरवरी 1946 में कैबिनेट मिशन भारत भेजा । इसमें 3 सदस्य पेथिक लौरेंस (भारत सचिव), क्रिप्स (व्यापर बोर्ड के अध्यक्ष) और ए. वी. एलेक्जेंडर (नौसेना के प्रमुख) थे ।केबिनेट मिशन की दोनों राजनीतिक दलों से चर्चा, विचार-विमर्श हुआ, परन्तु वे एकमत नहीं हुए । इसलिए प्रतिनिधि मंडल ने अपनी ओर से परेशानियों का

हल पेश किया। जिसे लार्ड वावेल और तीन प्रतिनिधियों द्वारा संयुक्त रूप से 16 मई 1946 को प्रकाशित किया गया। कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव सिफारिश की तरह थे। केबिनेट मिशन ने यह माना था कि दोनों दल इसे स्वीकार कर लेंगे। हुआ यह कि संविधान सभा के निर्वाचन में मुस्लिम लीग ने भाग लिया और उनके प्रत्याशी चुने भी गये लेकिन कैबिनेट के गुट सम्बन्धी खण्डों के बारे में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मतभेद हो गये। 6 दिसम्बर 1946 को ब्रिटिश सरकार ने एक कथन प्रकाशित किया कि " भारत की जनसँख्या के किसी बहुत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व यदि संविधान सभा में नहीं है तो ब्रिटिश सरकार ऐसे संविधान को उस भाग पर बलपूर्वक लागू नहीं करेगी।"

इस तरह से ब्रिटिश सरकार ने यह मान लिया कि दो राज्य व दो संविधान बन सकते हैं। 9 दिसम्बर 1946 की पहली संविधान की बैठक में मुस्लिमलीग के सदस्य उपस्थित नहीं हुए। 20 फरवरी 1947 ब्रिटिश सरकार ने एक और घोषणा की कि जून 1948 को भारत से ब्रिटिश शासन समाप्त कर दिया जायेगा व सत्ता भारतीयों को सौंप दी जाएगी, तब तक यदि संविधान सभा संविधान बनाने में असफल रही तो ब्रिटिश सरकार विचार करेगी कि सत्ता हस्तांतरित की जाये या नहीं।

कैबिनेट मिशन योजना के द्वारा संविधान सभा के गठन का प्रारूप तैयार किया गया। इस योजना के अनुसार संविधान सभा के लिए 389 सदस्य लिए जायेंगे जिसमें से 296 सदस्य उन प्रान्तों से होंगे जहाँ ब्रिटिश सरकार का सीधा नियंत्रण था और 93 सदस्य देशी रियासतों से लिए जायेंगे। राज्यों को संविधान सभा में सीटें जनसँख्या के आधार पर आवंटित हुई। (10 लाख पर 1 सीट)

### 1.5.3 माउंटवेटेन योजना

इसके बाद लार्ड वावेल की जगह लार्ड माउंटवेटेन को भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया, जिससे सत्ता का हस्तांतरण शीघ्र हो सके। माउंटवेटेन ने कांग्रेस व मुस्लिमलीग के बीच समझौता करवाया ।माउंटवेटेन योजना के अनुसार पंजाब व बंगाल के समस्या वाले प्रान्तों का विभाजन किया जायेगा तब लीग को पाकिस्तान मिलेगा, कांग्रेस को शेष भारत जहाँ मुस्लिम अल्पमत में थे। भारतीय स्वतंत्रता की अंतिम योजना माउंटवेटेन योजना थी। इसमें विभाजन, स्वायत्ता, दोनों राष्ट्रों की सम्प्रभुता, अपना संविधान बनाने के अधिकार शामिल थे। जम्मू और कश्मीर जैसी रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने का विकल्प दिया गया। इस योजना के अनुसार , बंगाल और पंजाब की विधानसभाओं के सदस्यों ने बैठक की और विभाजन के लिए मतदान किया गया और धार्मिक आधार पर विभाजन का निर्णय लिया गया। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और सिलहट के मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में जनमत संग्रह हुआ और बलूचिस्तान और सिंध के लोगों ने भी बहुमत से पाकिस्तान में शामिल होने का मन बनाया।

### 1.5.4 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947

26 जुलाई 1947 को गवर्नर-जनरल ने पाकिस्तान के लिए संविधान बनाने की घोषणा की देरी किये बिना इसी योजना को आधार बनाकर भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 तैयार किया गया। जिसे 4 जुलाई को संसद पुनः स्थापित होकर 18 जुलाई 1947 को शाही अनुमति मिली। इससे दो डोमिनियन भारत व पाकिस्तान की स्थापना की गयी। संविधान सभा को संविधान निर्माण से सम्बंधित असीमित शक्तियां प्राप्त हुई। इस अधिनियम के तहत भारत को सिंध, बलोचिस्तान, पश्चिमी पंजाब , पूर्वी बंगाल, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और असम के सिलहट जिले को छोड़ कर भारत का शेष राज्य क्षेत्र मिला। दोनों संविधान सभाओं को अपने- अपने राज्य के कानून बनाने की शक्ति दी गयी। संविधान सभा को विधान मंडल के रूप में कार्य करने की शक्ति प्रदान की गयी।

## 1.6 संविधान सभा का गठन ,संविधान निर्माण और संविधान सभा की कार्य प्रणाली

भारत की संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 (सोमवार) को हुई। जिसमें सच्चिदानन्द सिन्हा को अस्थायी अध्यक्ष चुना गया। 11 दिसम्बर को राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष व एच. सी. मुखर्जी को उपाध्यक्ष चुना गया।13 दिसम्बर 1946 को जवाहरलाल नेहरु ने उद्देशय प्रस्ताव पेश किया। इसी प्रस्ताव में भावी भारत के लिए लोकतान्त्रिक गणराज्य की रूपरेखा दी गयी थी। 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा ने इसी प्रस्ताव को स्वीकार किया। बी. एन. राव को संवैधानिक सलाहकार नियुक्त किया गया। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. बी. आर. आम्बेडकर थे। विभाजन के बाद संविधान सभा की बैठक 14 अगस्त 1947 को हुई। अब सदस्यों की संख्या में बदलाव आ गया विभाजन के बाद 299 सदस्य हो गये और आम्बेडकर को बंगाल से चुना गया। संविधान निर्माण कार्य के पूर्ण होने पर 26 नवम्बर 1949 को 284 सदस्यों ने हस्ताक्षर किये। हांलाकि संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ, परन्तु कुछ प्रावधान जैसे नागरिकता , चुनाव आदि 26 नवम्बर से ही लागू हो गये थे।

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई। संविधान निर्माण की शुरुआत 13 दिसम्बर 1946 से हुई जब जवाहर लाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव पढ़ा । यही प्रस्ताव संविधान की रुपरेखा थी जिसके आधार पर संविधान का निर्माण होना था। जहाँ इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय की बात कही गयी थी वहीं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अवसर और कानून के समक्ष समानता की गारंटी दी गयी थी। इस प्रस्ताव ने संविधान सभा को मार्गदर्शी सिध्दांत तथा दर्शन दिया, जिनके आधार पर संविधान का निर्माण होना था । संविधान सभा ने संविधान निर्माण में विभिन्न पहलुओं को गौर से देखने के लिए अनेक समितियां नियुक्त की। इनमें प्रारूप समिति , संघ संविधान समिति, प्रांतीय संविधान समिति , मूलाधिकारों, अल्पसंख्यकों से सम्बंधित समिति आदि थी । इन समितियों ने बड़ी मेहनत से सुनियोजित ढंग से काम किया।

प्रारूप समिति ने संविधान का प्रारूप 21 फरवरी 1948 को अध्यक्ष को पेश किया। इस प्रारूप के संशोधन के लिए बहुत सी टिप्पड़ियां, आलोचनाएँ और सुझाव मिले जिन पर विशेष समिति द्वारा विचार किया गया। संसोधन के बाद संविधान के प्रारूप को 26 अक्टूबर 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को पेश किया गया। नवम्बर 1948 से नवम्बर 1949 के बीच उस पर फिर विचार किया गया। प्रस्तावना सबसे बाद में स्वीकार की गयी। 26 नवम्बर 1949को प्रस्ताव स्वीकृत हुआ 284 सदस्यों ने हस्ताक्षर किये।

संविधान सभा में कांग्रेस का बहुमत था, जिसमें नेहरू, पटेल,आजाद आदि की अहम् भूमिका थी। लेकिन संविधानसभा में डॉ. आम्बेडकर , डॉ. राधाकृष्णन, प्रो. के.टी. शाह जैसे गैर-कांग्रेसी नेता भी थे। संविधान सभा में हर एक पक्ष पर गहन विचार- विमर्श करने व आम सहमती पर निर्णय लेने का प्रयास किया गया। किसी विशेष विचार को महत्त्व देने के बजाय उन को वारयिता दी गयी जो भारत के लिए अनुकूल थे। संविधान निर्माताओं ने शासन प्रणाली का मूल आधार उदारवादी , उद्देश्य समाजवादी रखे । गांधीवादी आदर्श नीतिनिदेशक तत्वों के शामिल किये।

**अभ्यास प्रश्न**

1 संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष कौन थे?

2 भारतीय संविधान सभा की पहली बैठक कब हुई?

3 भारतीय संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष कौन थे?

4 किस अधिनियम द्वारा केंद्र में द्वैध शासन लागू किया गया?

5 कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा में सदस्य संख्या कितनी थी?

6 भारत का संविधान कब बनकर तैयार हुआ?

7 भारत का संविधान कब लागू हुआ?

## 1.7 सारांश

भारत का संविधान लिखित, व्यापक तथा उदारवादी है। उदारवादी होने से मतलब सामाजिक न्याय से है, भारतीय संविधान ने समाज के वंचित लोगों जिनके साथ लम्बे समय से अन्याय हुआ है, उनके

लिए उदारवादी नीतियाँ अपनाई है जैसे आरक्षण आदि। जिस समय संविधान का निर्माण कार्य चल रहा था वह समय व स्थितियां सामान्य नहीं थी। भारत विभाजन की त्रासदी झेल रहा था और गुलामी के दौर से निकला ही था। फिर भी विपरीत परिस्थितियों में संविधान निर्माताओं ने एक ऐसा संविधान देश को दिया जिसमें लोकतान्त्रिक, उदारवादी, समाजवादी मूल्य विद्यमान हैं । भारतीय संविधान ने गणराज्य की स्थापना की। दुनिया भर के देशों के संविधानों से बेहतरीन पहलुओं को लेकर भारतीय संविधान को संपन्न बनाने का कार्य किया गया। संवैधानिक मूल्य भारत के संविधान में हर जगह प्रतिविम्बित होते हैं। औपनिवेशिक शासन की राजनीतिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं को जानने से संविधान निर्माताओं को नई राजनीतिक व्यवस्था /संस्था बनाने में मदद मिली। भारतीय नेताओं ने स्वतंत्रता से पहले ही काफी चिंतन - मनन और बहसें कर ली थी कि भारत का स्वरुप आजादी के बाद कैसा होगा। भारतीय संविधान सभा की महत्वपूर्ण समितियों ने कड़ी मेहनत से हर पक्ष पर विचार विमर्श करने का प्रयास किया और संविधान को मजबूत रूप दिया। ब्रिटिश शासन काल के विभिन्न अधिनियमों ने भी संविधान का विकास में अपना योगदान किया जिसमें 1935 का भारत शासन अधिनियम सबसे महत्वपूर्ण है।

## 1.8 शब्दावली

द्वैध शासन - दोहरा शासन।

कॉन्टिनेंटल सिस्टम - यूरोप में फ्रांसिसी सहयोगियों में ब्रिटिश माल के आयत पर रोक लगा दी।

औपनिवेशिक शासन - एक विदेशी राजनीतिक सत्ता द्वारा किसी देश की प्रभुसत्ता पर राज करना।

## 1.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. डॉ. बी आर. आम्बेडकर 2. 9 दिसम्बर 1946 3. राजेन्द्र प्रसाद 4.भारत शासन अधिनियम 1935 5. 389 6. 26 नवम्बर 7. 26 जनवरी

## 1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हमारा संविधान भारत का संविधान और संवैधानिक विधि- सुभाष कश्यप, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
2. भारत का संविधान एक परिचय- डॉ दी . दी बसु, लेक्सिसनेक्सिस, नागपुर
3. भारत की राजव्यवस्था- एम. लक्ष्मीकांत, मैकग्राहिल पब्लिकेशन

4. https://hindi।ipleaders।in/the-history-and-development-of-the-constitution-of-india/
5. https://byjus।com/free-ias-prep/ncert-notes-charter-act-1813/

## 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री

काश्यप सुभाष, हमारा संविधान, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट

बसु, दी .दी , भारत का संविधान - एक परिचय, नागपुर, वाधवा

## 1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में भारत के संवैधानिक विकास पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
2. भारतीय संविधान के निर्माण में संविधान सभा की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

# इकाई -2 भारतीय संविधान का दर्शन

**2.0 प्रस्तावना**

**2.1 उद्देश्य**

**2.2 भारतीय संविधान के दर्शन का आधार एवं संरचना**

**2.3 संविधान का प्रस्तावना**

**2.4 संविधान का उद्देश्य**

**2.5 संविधान की प्रस्तावना में निहित मूल्य एवं दर्शन**

**2.6 अभ्यास प्रश्न**

**2.7 सारांश**

**2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

**2.9 शब्दावली**

**2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ**

**2.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री**

**2.12 निबंधात्मक प्रश्न**

## 2.0 प्रस्तावना

संविधान का दर्शन उन अंतर्निहित सिद्धांतों और मूल्यों को संदर्भित करता है जिन पर संविधान आधारित है। यह मौलिक विचारों और आदर्शों को शामिल करता है जो एक संविधान के निर्माण, व्याख्या और आवेदन को निर्देशित करते हैं। एक संविधान का दर्शन अक्सर किसी विशेष समाज के सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक मूल्यों या उसके निर्माताओं की आकांक्षाओं को दर्शाता है। किसी संविधान का दर्शन उस विशिष्ट संदर्भ और ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर भिन्न हो सकता है जिसमें इसे विकसित किया गया है। प्रत्येक संविधान का अपना एक दर्शन होता है। संविधान मात्र विभिन्न प्रकार के कानूनों का संकलन नहीं है वरन संविधान के पीछे एक नैतिक दृष्टि कार्य करती है। प्रायः कुछ लोग यह मानते हैं कि संविधान मात्र कानूनों से बनता है इसलिए संविधान के प्रति कानूनी दृष्टिकोण अपनाए जाने की सदैव आशंका बनी रहती है जबकि संविधान का राजनैतिक दर्शन एवं नैतिक दृष्टिकोण भी होता है। ऐसा संभव है कि हर कानून में नैतिक आग्रह न हो परन्तु कई तरह के कानूनों का हमारे मूल्यों और आदर्शों से गहरा सम्बन्ध होता है।

भारतीय संविधान के दर्शन की शुरुआत प्रमुख रूप से 1922 से मानी जा सकती है जब गांधी जी ने मांग की थी कि भारतीय संविधान सभा का निर्माण भारतीयों द्वारा किया जाना चाहिए। इसके पश्चात 1928 में नेहरू रिपोर्ट में भी इस बात का समर्थन किया गया कि भारतीय द्वारा ही संविधान सभा का निर्माण किया जाना चाहिए। क्रिप्स मिशन 1942 द्वारा पहली बार यह स्वीकार किया गया कि भारत के लिए संविधान का निर्माण स्वयं भारतीय जनता के द्वारा होगा इसके पश्चात कैबिनेट मिशन 1946 के द्वारा इसके गठन का प्रारूप निर्मित किया गया। भारतीय संविधान प्रकृति में एक लिखित एवं कठोर संविधान है। इसे 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा द्वारा अपनाया गया और 26 जनवरी 1950 को अधिनियमित किया गया। उस समय इसमें 395 अनुच्छेद, 8 अनुसूचियां और 22 भाग थे। बाद में संशोधन द्वारा 4 अनुसूचियाँ जोड़ी गईं और वर्तमान समय में इसमें 12 अनुसूचियाँ हैं। अक्टूबर 2021 तक संविधान में 105 संशोधन किये गये।

## 2.1 उद्देश्य

1) भारतीय संविधान के दार्शनिक आधार एवं संरचना को समझ सकेंगे
2) संविधान की प्रस्तावना में निहित विभिन्न मूल्यों एवं दर्शन को जान पाएंगे
3) भारतीय संविधान बनने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जान पाएंगे

## 2.2 भारतीय संविधान के दर्शन का आधार एवं संरचना

संविधान शासन की एक रूपरेखा प्रदान करता है। यह सरकार के बुनियादी अंगों और संरचना, कार्यों, संरचना और शक्तियों को स्थापित करने के लिए सिद्धांतों या शासन के आवश्यक नियमों के बुनियादी शासकीय सेट को निर्धारित करता है। उसके पीछे दार्शनिक विचार यह था कि एक मजबूत और स्वतंत्र देश होने के लिए एक ऐसा संविधान होना चाहिए जो विभिन्न अंगों के बीच अंतर्संबंध बनाने और लोगों के साथ उनके संबंधों को विनियमित करने में मदद करे। कुछ अधिकारों के रूप में, सरकार और लोगों के बीच संबंध आम तौर पर राष्ट्र के मौलिक राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक विचारों के आधार पर तय होते थे । संविधान के दर्शन से अभिप्राय उन आदर्शों से है जिससे **भारतीय संविधान अभिप्रेरित हुआ और उन नीतियों से है जिन पर हमारा संविधान और शासन प्रणाली आधारित है. हमारे संविधान का दार्शनिक आधार पंडित जवाहरलाल नेहरू का वह 'उद्देश्य प्रस्ताव'** (Objective Resolution) है जिसे उन्होंने 13 दिसम्बर, 1946 को **संविधान निर्मात्री सभा** में प्रस्तुत किया था. वह संकल्प इस प्रकार था –

1. संविधान सभा भारत को स्वतंत्र प्रभुत्वसंपन्न गणराज्य के रूप में घोषित करने के अपने दृढ और सत्यनिष्ठ संकल्प की और भारत के भावी शासन के लिए संविधान बनाने की घोषणा करती है
2. जिसमें उन राज्य क्षेत्रों का जो ब्रिटिश भारत में समाविष्ट हैं , उन राज्यक्षेत्रों का जो अभी देशी रियासतों के भाग हैं और भारत के उन अन्य भागों का जो अभी ब्रिटिश भारत के बाहर हैं और ऐसी रियासतों का तथा ऐसे अन्य राज्यक्षेत्रों का जो स्वतंत्र प्रभुत्वसंपन्न भारत के भाग बनने के लिए सहमत हैं , मिलकर एक संघ बनेगा , और
3. उक्त राज्य क्षेत्र , अपनी वर्तमान सीमाओं से या ऐसी सीमाओं से जो संविधान सभा द्वारा या उसके पश्चात सांविधानिक विधि के अनुसार अवधारित किए जाएं , स्वायत्त इकाइयों की प्रास्थिति रखेंगे और बने रहेंगे । उन्हें अवशिष्ट शक्तियां होंगी और वे सरकार और प्रशासन की सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करेंगे केवल ऐसी शक्तियों और कृत्यों को छोड़कर जो संघ में निहित या संघ को समुनिदिष्ट हैं या जो संघ में अन्तर्निहित या विवक्षित हैं या उसके परिणामस्वरुप हैं , और
4. प्रभुत्वसंपन्न स्वतंत्र भारत की सभी शक्तियां और प्राधिकार , उसके संघटक भाग और शासन के सभी अंग लोक से व्युत्पन्न हैं और

5. भारत की जनता को सामाजिक , आर्थिक और राजनैतिक न्याय ; प्रतिष्ठा और अवसर की तथा विधि के समक्ष समता , विचार , अभिव्यक्ति , विश्वास , धर्म , उपासना , व्यवसाय , संगम और कार्य की स्वतंत्रता विधि और सदाचार के अधीन रहते हुए होगी , और
6. अल्पसंख्यकों के लिए , पिछड़े और जनजाति क्षेत्रों के लिए और दलित और अन्य पिछड़े हुए वर्गों के लिए पर्याप्त रक्षोपाय किए जायेंगे , और
7. गणराज्य के राज्यक्षेत्र की अखंडता और भूमि , समुद्र तथा आकाश पर उसके प्रभुत्वसंपन्न अधिकार , न्याय और सभ्य राष्ट्रों की विधि के अनुसार बनाये रखे जायेंगे , और
8. यह प्राचीन भूमि विश्व में अपना समुचित और गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी और विश्वशांति तथा मानव कल्याण के लिए स्वेच्छा से अपना पूरा सहयोग प्रदान करेगी।

पंडित नेहरु के शब्दों में उपर्युक्त संकल्प "संकल्प से कुछ अधिक है यह एक घोषणा है , एक दृढ निश्चय है , एक प्रतिज्ञा है , एक वचन है और हम सभी के लिए यह एक समर्पण है। पंडित नेहरु के उद्देश्य प्रस्ताव में जिन आदर्शों की बात की गयी है वे संविधान की प्रस्तावना में दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तावना में संविधान के ध्येय एवं उसके उद्देश्यों का संक्षेप में वर्णन है।

## 2.3 संविधान की प्रस्तावना

**"हम भारत के लोग , भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए ,** तथा **उसके** समस्त नागरिकों को :

**सामाजिक** , आर्थिक और राजनीतिक न्याय ,

**विचार ,** अभिव्यक्ति , विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता ,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए , तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की

एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता

बढाने के लिए

दृढ संकल्प होकर इस संविधान सभा में आज तारीख 26-11-1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी , संवत् दो हज़ार छह विक्रमी ) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत , अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

## 2.4 संविधान का उद्देश्य (Purpose of constitution)

संविधान के उद्देश्य को कुछ बुनियादी प्रश्नों के माध्यम से समझ सकते हैं, जैसे कि – राज्य का स्वरुप एवं संरचना कैसी होगी, सरकार की प्रकृति कैसी होगी, शक्तियों का विभाजन या बंटवारा कैसे और किस किस को किया जायेगा , सरकार के अधिकार और कार्य तथा व्यक्ति के अधिकार और कार्य क्या होंगे ? स्वतंत्रता किस सीमा तक होगी ? , व्यक्ति और सरकार के बीच संबंध कैसा होगा ? हम किस प्रकार के राज्य की स्थापना करना चाहते हैं इत्यादि। इन्ही प्रश्नों का एक सर्वमान्य एवं व्यवस्थित उत्तर स्थापित करना संविधान का प्रमुख उद्देश्य होता है। सुप्रीम कोर्ट ने अपने अनेक निर्णयों में संविधान की प्रस्तावना ( उद्देशिका ) के महत्व एवं उसकी उपयोगिता को समय- समय पर बताया है। हालाँकि प्रस्तावना को न्यायालय में बाध्यकारी रूप से लागू (प्रवर्तित) नहीं किया जा सकता परन्तु लिखित संविधान की उद्देशिका में वे उद्देश्य लेखबद्ध किये जाते हैं जिनकी जिनकी स्थापना और संप्रवर्तन के लिए संविधान की रचना होती है । जहाँ भाषा में संदिग्धता उत्पन्न होने की आशंका होती है वहां उद्देशिका संविधान के विधिक निर्वाचन में सहायक सिद्ध होती है। संविधान में समाहित आदर्श और आकांक्षाओं के समुचित अधिमूल्यन के लिए हमें उद्देशिका में प्रयुक्त विभिन्न अभिव्यक्तियों की ओर ध्यान देना होगा। उद्देशिका से दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं : (क) उद्देशिका यह बताती है कि संविधान के प्राधिकार का स्रोत क्या है (ख) वह यह भी बताती है कि संविधान किन उद्देश्यों को संवर्धित या प्राप्त करना चाहता है ।

यह सर्वविदित तथ्य है कि भारत का संविधान ब्रिटिश संसद की देन नहीं है। इस सन्दर्भ में यह पूर्व के सभी भारत को शासित करने वाले अधिनियमों से बिल्कुल अलग है। कांग्रेस के नेता जानते थे कि संविधान मुख्यतः एक राजनीतिक दस्तावेज़ था इसलिए इसमें राजनीतिक संरचना अवश्य बताई जानी चाहिए। इस संरचना की सबसे विस्तृत रूपरेखा संविधान सभा की बैठक से 20 दिन पहले 20 नवंबर 1946 को कांग्रेस के प्रस्ताव में बता दी गई थी।

## 2.5 संविधान की प्रस्तावना में निहित मूल्य एवं दर्शन

भारतीय संविधान की प्रस्तावना एक परिचयात्मक वक्तव्य के रूप में कार्य करती है जो संविधान के मार्गदर्शक सिद्धांतों और उद्देश्यों को रेखांकित करती है। यह भारतीय राष्ट्र की आकांक्षाओं, आदर्शों

और मूल मूल्यों को दर्शाता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना शक्तिशाली शब्दों, "हम, भारत के लोग" से शुरू होती है, जो राष्ट्र की संप्रभुता और लोकतांत्रिक प्रकृति पर प्रकाश डालती है। संविधान की प्रस्तावना संविधान का मूल है जिसमें ऐसे शब्द शामिल हैं जिन्हें संविधान निर्माता हासिल करना चाहते थे।

प्रस्तावना से यह संकेत मिलता है कि संविधान की सत्ता का स्रोत भारत की जनता में निहित है। यह भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करती है। प्रस्तावना में बताए गए उद्देश्य सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता सुनिश्चित करना और राष्ट्र की एकता और अखंडता बनाए रखने के लिए भाईचारे को बढ़ावा देना है। इसमें उस तारीख का उल्लेख है जब इसे अपनाया गया था यानी 26 नवंबर, 1949।

संविधान निर्माण के लिए 1946 में एक संविधान सभा (Constituent Assembly) का गठन किया गया था। इसी संविधान सभा ने संविधान निर्माण को उसकी परिणति तक पहुंचाया था पर संविधान सभा का गठन कैसे हुआ ये समझने के लिए पहले के उन महत्वपूर्ण घटनाओं को समझना जरूरी है जिसके फलस्वरूप संविधान सभा अस्तित्व में आया। सन् 1764 ई. से 1857 तक के लगभग 100 साल के कंपनी शासन एवं 1858 से 1947 तक के ताज के शासन पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि इस काल में ढेरों विधि-विधान एवं नियम बनाए गए। हालांकि सारे विधि –विधान अंतत: ब्रिटिश हितों के पक्ष में ही थे लेकिन विधि-विधान की इस परंपरा ने भारतीयों को एक तरह से तैयार किया जो कि संविधान निर्माण के वक़्त काफी कारगर साबित हुआ। जैसे कि आज हमारे संसद में दो सदन है राज्य सभा और लोक सभा, पर यह विचार कोई नया नहीं है बल्कि 1919 के भारत शासन अधिनियम में पहली बार ये व्यवस्था किया गया था। संविधान की निर्मिति में जिन मूल विचारों एवं मूल्यों को समाहित किया गया है वो निम्नलिखित हैं –

**2.5.1 संप्रभुता-** संप्रभु शब्द का आशय है भारत न तो किसी देश पर किसी भी स्वरुप में निर्भर है और न ही किसी अन्य देश का डोमिनियन है । इसके ऊपर और कोई शक्ति नहीं है और यह अपने मामलों ( आन्तरिक एवं बाहरी ) का निस्तारण करने के लिए स्वतंत्र है। यद्यपि वर्ष 1949 में भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता स्वीकार करते हुए ब्रिटेन को इसका प्रमुख माना , तथापि संविधान से अलग यह घोषणा किसी भी तरह से भारतीय संप्रभुता को प्रभावित नहीं करती। संप्रभुता का विचार भारतीय संविधान में अंतर्निहित एक मौलिक सिद्धांत है। संप्रभुता का तात्पर्य किसी बाहरी हस्तक्षेप के बिना स्वयं पर शासन करने की राज्य की सर्वोच्च शक्ति से है। भारतीय संदर्भ में,

संप्रभुता की अवधारणा के कई आयाम और निहितार्थ हैं, जो संविधान के विभिन्न प्रावधानों में परिलक्षित होते हैं ।इसी प्रकार भारत की संयुक्त राष्ट्र में सदस्यता उसकी संप्रभुता को किसी मायने मे सीमित नहीं करती। एक संप्रभु राज्य होने के नाते किसी विदेशी सीमा अधिग्रहण अथवा किसी अन्य देश के पक्ष में अपनी सीमा के किसी हिस्से पर से दावा छोड़ सकता है। भारतीय संविधान में संप्रभुता का विचार लोकप्रिय संप्रभुता, मौलिक अधिकार, संघवाद, न्यायिक समीक्षा और संशोधन प्रक्रिया के सिद्धांतों के माध्यम से परिलक्षित होता है। यह भारत को एक स्वतंत्र और स्वशासित राष्ट्र के रूप में स्थापित करता है, जिसकी शक्ति लोगों से प्राप्त होती है और संविधान के अनुसार प्रयोग की जाती है।

**2.5.2 समाजवादी दर्शन -** समाजवाद का दर्शन भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण पहलू है ।वर्ष 1976 के 42वें संविधान संशोधन में नीति निदेशक सिद्धांतों के रूप में समाजवादी लक्षण मौजूद थे। अर्थात इस प्रकार जो बात पूर्व में संविधान में अन्तर्निहित थी , उसे स्पष्ट रूप से जोड़ दिया गया और फिर कांग्रेस पार्टी ने समाजवादी स्वरुप को स्थापित करने के लिए 1955 में अवाड़ी सत्र में एक प्रस्ताव पारित कर उसके अनुसार कार्य किया। यह बात विचारयोग्य है कि भारतीय समाजवाद 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' है न कि 'साम्यवादी समाजवाद' जिसे 'राज्याश्रित समाजवाद' भी कहा जाता है , जिसमें उत्पादन और वितरण के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण और निजी संपत्ति का अन्मूलन शामिल है । लोकतान्त्रिक समाजवाद मिश्रित अर्थव्यवस्था में आस्था रखता है , जहाँ सार्वजनिक व निजी क्षेत्र साथ साथ उपस्थित रहते हैं। जैसा कि सर्वोच्च न्यायलय कहता है , "लोकतान्त्रिक समाजवाद का उद्देश्य गरीबी , उपेक्षा , बीमारी व अवसर की समानता को समाप्त करना है"। भारतीय समाजवाद मार्क्सवाद और गांधीवाद का मिला जुला रूप है , जिसमें गांधीवादी समाजवाद की ओर ज्यादा झुकाव है । उदारीकरण , निजीकरण एवं वैश्वीकरण की नयी आर्थिक नीति (1991 ने हालाँकि भारत के समाजवादी प्रतिरूप को थोडा लचीला बनाया है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करती है, जो राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले मूलभूत मूल्यों को दर्शाती है।

पिछले कुछ वर्षों में, भारत सरकार ने ऐसी नीतियां अपनाई हैं जो आर्थिक वृद्धि और विकास को बढ़ावा देने के साथ-साथ सामाजिक असमानताओं को भी संबोधित करती हैं और अपने नागरिकों के लिए एक सामाजिक सुरक्षा जाल प्रदान करती हैं। भारतीय समाज में समाजवादी सिद्धांतों की व्याख्या और कार्यान्वयन समय के साथ विकसित हुआ है और राजनीतिक और वैचारिक बहस का विषय बना हुआ है।

**2.5.3 धर्मनिरपेक्षता** – धर्मनिरपेक्ष शब्द को भी 42वें संविधान संशोधन अधिनियम , १९७६ द्वारा जोड़ा गया । जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने भी 1974 में कहा था कि यद्यपि 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' शब्द का स्पष्ट रूप से संविधान में उल्लेख नहीं किया गया था तथापि इसमें कोई संदेह नहीं है कि, संविधान के निर्माता ऐसे ही राज्य की स्थापना करना चाहते थे । इसीलिए संविधान में अनुच्छेद 25 से 28 ( धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार ) जोड़े गए । भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता की सभी अवधारणायें विद्यमान हैं अर्थात् हमारे देश में सभी धर्म समान हैं उन्हें समान रूप से सरकार का समर्थन प्राप्त है। धर्मनिरपेक्ष" शब्द का अर्थ है धर्म से "अलग होना", या कोई धार्मिक आधार न होना। एक धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति वह है जो अपने नैतिक मूल्यों का श्रेय किसी धर्म को नहीं देता बल्कि उनके मूल्य उनकी तर्कसंगत और वैज्ञानिक सोच की उपज हैं। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है धर्म को जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं से अलग करना, धर्म को पूरी तरह से व्यक्तिगत मामला मानना । इसमें राज्य को धर्म से अलग करने और सभी धर्मों को पूर्ण स्वतंत्रता तथा सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता पर जोर दिया गया । यह सभी धर्मों के अनुयायियों के लिए समान अवसरों और धर्म के आधार पर कोई भेदभाव और पक्षपात नहीं करने का भी समर्थन करता है ।

### 2.5.3.1 भारत के इतिहास में धर्मनिरपेक्षता-

भारत के इतिहास में धर्मनिरपेक्ष परंपराएँ बहुत गहरी जड़ें जमा चुकी हैं। भारतीय संस्कृति विभिन्न आध्यात्मिक परंपराओं और सामाजिक आंदोलनों के मिश्रण पर आधारित है। प्राचीन भारत में, संनातन धर्म (हिंदू धर्म) ने मूल रूप से विभिन्न आध्यात्मिक परंपराओं का स्वागत

करके और उन्हें एक आम मुख्यधारा में एकीकृत करने का प्रयास करके एक समग्र धर्म के रूप में विकसित होने की अनुमति प्रदान की ।चार वेदों का विकास और उपनिषदों और पुराणों की विभिन्न व्याख्याएँ हिंदू धर्म की धार्मिक बहुलता को स्पष्ट रूप से उजागर करती हैं। सम्राट अशोक ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में घोषणा करने वाले पहले महान सम्राट थे कि, राज्य किसी भी धार्मिक संप्रदाय पर मुकदमा नहीं चलाएगा। सम्राट अशोक ने अपने 12वें शिलालेख में, न केवल सभी धर्म संप्रदायों के प्रति सहिष्णुता की अपील की, बल्कि उनके प्रति अत्यधिक सम्मान की भावना विकसित करने की भी अपील की। भारतीय धरती पर जैन धर्म, बौद्ध धर्म और बाद में इस्लाम और ईसाई धर्म के आगमन के बाद भी, विभिन्न धर्मों की धार्मिक सहिष्णुता और सह-अस्तित्व की तलाश जारी रही । मध्ययुगीन भारत में, सूफी और भक्ति आंदोलन विभिन्न समुदायों के लोगों को प्रेम और शांति से जोड़ते हैं। इन आंदोलनों के प्रमुख नायक थे ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, बाबा फरीद, संत कबीर दास, गुरु नानक देव, संत तुकाराम और मीरा बाई आदि।

**2.5.4 लोकतांत्रिकता** – संविधान की प्रस्तावना में एक "लोकतान्त्रिक राजव्यवस्था" की परिकल्पना की गयी है। यह प्रचलित संप्रभुता के सिद्धांत पर आधारित है अर्थात सर्वोच्च शक्ति जनता के हाथ में है । लोकतंत्र दो प्रकार का होता है – प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष । प्रत्यक्ष लोकतंत्र में नागरिक अपनी शक्ति का इस्तेमाल प्रत्यक्ष रूप से करते हैं , जैसे स्विट्जरलैंड में होता है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र के अतर्गत चार मुख्य कार्यप्रणालियां है जैसे – परिपृच्छा ( Referendum ) , पहल ( Initiative ), प्रत्यावर्तन या प्रत्याशी को वापस बुलाना (Recall)। भारतीय संविधान लोकतंत्रीकरण के दर्शन के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। यह लोकप्रिय संप्रभुता, समानता और मौलिक अधिकारों के सिद्धांतों को स्थापित करता है, जो एक लोकतांत्रिक समाज का आधार बनते हैं। भारतीय संविधान के निर्माताओं का लक्ष्य एक ऐसी सरकार प्रणाली स्थापित करना था जो समावेशी, सहभागी और अपने नागरिकों के प्रति जवाबदेह हो। भारतीय संविधान में लोकतंत्रीकरण दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों में से एक लोकप्रिय संप्रभुता का विचार है। संविधान घोषित करता है कि सत्ता भारत के लोगों के पास है, जो स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं। यह अवधारणा सुनिश्चित करती है कि सरकार अपना अधिकार शासितों की सहमति से प्राप्त करती है और उनके प्रति जवाबदेह है । भारतीय संविधान भी समानता के

सिद्धांत पर जोर देता है। यह सभी व्यक्तियों के लिए कानून के तहत समान व्यवहार और सुरक्षा की गारंटी देता है, चाहे उनकी जाति, पंथ, लिंग, धर्म या सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो। समानता के प्रति इस प्रतिबद्धता का उद्देश्य भेदभाव को खत्म करना और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना, एक अधिक समावेशी और समतावादी समाज को बढ़ावा देना है । भारतीय संविधान में लोकतंत्रीकरण दर्शन का एक अन्य आवश्यक पहलू मौलिक अधिकारों की सुरक्षा है। ये अधिकार संविधान के भाग III में निहित हैं और इसमें भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार और जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार जैसी स्वतंत्रताएं शामिल हैं। ये मौलिक अधिकार सुनिश्चित करते हैं कि व्यक्तियों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में पूर्ण रूप से भाग लेने और गरिमा और स्वायत्तता का जीवन जीने के लिए आवश्यक सुरक्षा उपाय प्राप्त हों ।

भारतीय संविधान विकेंद्रीकृत और सहभागी लोकतंत्र की रूपरेखा भी निर्धारित करता है। यह सरकार की एक संघीय प्रणाली स्थापित करता है जहां केंद्र और राज्य सरकारों के बीच शक्ति साझा की जाती है, जिससे स्थानीय प्रतिनिधित्व और निर्णय लेने की अनुमति मिलती है। यह पंचायतों और नगर पालिकाओं जैसे स्थानीय स्वशासन संस्थानों की स्थापना का भी प्रावधान करता है, जो नागरिकों को अपने समुदायों के शासन में सक्रिय रूप से भाग लेने में सक्षम बनाता है । संक्षेप में, भारतीय संविधान में लोकतंत्रीकरण का दर्शन लोकप्रिय संप्रभुता, समानता, मौलिक अधिकार, विकेंद्रीकृत शासन और नियंत्रण और संतुलन के सिद्धांतों को बढ़ावा देता है। यह एक लोकतांत्रिक समाज की स्थापना करना चाहता है जो समावेशिता, न्याय और जवाबदेही की भावना को बढ़ावा देते हुए अपने सभी नागरिकों की भागीदारी और भलाई को महत्व देता है ।

**2.5.5 स्वतंत्रतता-** भारतीय संविधान स्वतंत्रता के दर्शन को अपने मूलभूत सिद्धांतों में से एक के रूप में कायम रखता है। यह विभिन्न प्रावधानों को स्थापित करता है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा और प्रचार करते हैं, यह सुनिश्चित करते हैं कि नागरिकों को सम्मान के साथ जीने और अपनी

आकांक्षाओं को आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता है। यहां भारतीय संविधान में स्वतंत्रता के दर्शन का अवलोकन दिया गया है:

मौलिक अधिकार: संविधान कई मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कायम रखते हैं। इनमें समानता का अधिकार, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार और भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा का अधिकार शामिल हैं। ये अधिकार नागरिकों को अपनी राय व्यक्त करने, अपने धर्म का पालन करने और कानून के तहत समान व्यवहार का आनंद लेने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं।

जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार: संविधान जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अंतर्निहित अधिकार को मौलिक मानता है। अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा सुनिश्चित करता है, व्यक्तियों को कानून की उचित प्रक्रिया के बिना मनमानी गिरफ्तारी, हिरासत या उनकी स्वतंत्रता से वंचित करने से बचाता है। यह प्रावधान उस दर्शन को दर्शाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान और स्वायत्तता के साथ जीने का अधिकार है। भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता: संविधान भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी देता है (अनुच्छेद 19)। यह व्यक्तियों को अपने विचारों, विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का अधिकार देता है, एक जीवंत लोकतंत्र को सक्षम बनाता है और राष्ट्र को आकार देने में सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ावा देता है।

धर्म की स्वतंत्रता: संविधान धर्म की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25) को बरकरार रखता है, जो व्यक्तियों को अपने धर्म का स्वतंत्र रूप से अभ्यास करने, मानने और प्रचार करने का अधिकार देता है। यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को अपनी मान्यताओं का पालन करने और बिना किसी हस्तक्षेप या भेदभाव के धार्मिक गतिविधियों में शामिल होने की स्वतंत्रता है।

शिक्षा का अधिकार: संविधान व्यक्तियों को सशक्त बनाने और स्वतंत्रता को बढ़ावा देने में शिक्षा के महत्व को मान्यता देता है। इसमें शिक्षा के अधिकार

को मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 21ए) के रूप में शामिल किया गया है, जो यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक बच्चे को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले।

निजता का अधिकार: जबकि निजता के अधिकार का संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय ने इसे अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार के रूप में व्याख्या की है। यह मान्यता व्यक्तिगत स्वायत्तता के महत्व और व्यक्तियों के निजी क्षेत्र की सुरक्षा पर जोर देती है।

भारतीय संविधान में स्वतंत्रता के दर्शन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा, नागरिकों को अपनी पसंद का जीवन जीने, खुद को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने और समान उपचार और अवसरों का आनंद लेने में सक्षम बनाना शामिल है। ये प्रावधान एक ऐसे समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं जो सामाजिक सद्भाव और सभी नागरिकों की बेहतरी सुनिश्चित करते हुए व्यक्तिगत अधिकारों, गरिमा और स्वायत्तता को महत्व देता है।

**2.5.6 बंधुता** – भारतीय संविधान में बंधुत्व का विचार इसकी प्रस्तावना में निहित है, जो संविधान के मूल सिद्धांतों और उद्देश्यों को निर्धारित करता है । संविधान में "बंधुत्व" शब्द का तात्पर्य भारत के लोगों के बीच भाईचारे और एकता की भावना से है। यह जाति, पंथ, धर्म, भाषा और क्षेत्र की बाधाओं को पार करते हुए नागरिकों के बीच सामान्य पहचान और अपनेपन की भावना को बढ़ावा देने के महत्व पर जोर देता है । बंधुत्व का विचार केवल एक अमूर्त धारणा नहीं है बल्कि एक मौलिक सिद्धांत है जो राष्ट्र की एकता और अखंडता को रेखांकित करता है। इसका उद्देश्य एक ऐसे समाज को बढ़ावा देना है जहां व्यक्ति एक-दूसरे का सम्मान करें और देखभाल करें, सामूहिक भलाई के लिए मिलकर काम करें और सामाजिक न्याय, समानता और गरिमा के सिद्धांतों को कायम रखें । भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भारत जैसे विविध और बहुलवादी समाज में एक एकीकृत शक्ति के रूप में भाईचारे के महत्व को पहचाना । वे एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे जहाँ विभिन्न पृष्ठभूमियों और पहचानों के लोग सौहार्दपूर्ण ढंग से सह-अस्तित्व में रह सकें और राष्ट्र-निर्माण के सामान्य लक्ष्य की दिशा में काम

कर सकें । व्यावहारिक रूप से, बंधुत्व का सिद्धांत भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधानों, जैसे मौलिक अधिकार, राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत और नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों में परिलक्षित होता है। यह व्यापक कानूनी ढांचे में भी अभिव्यक्ति पाता है, समावेशिता को बढ़ावा देता है और अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा करता है ।

**2.5.7 प्रतिनिधिक लोकतंत्र -** प्रतिनिधि लोकतंत्र का विचार भारतीय संविधान का एक मूलभूत स्तंभ है। विभिन्न प्रावधानों में निहित, यह अवधारणा सुनिश्चित करती है कि भारत के लोग निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी संप्रभु शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। एक प्रतिनिधि लोकतंत्र में, नागरिक ऐसे व्यक्तियों को चुनकर अप्रत्यक्ष रूप से देश के शासन में भाग लेते हैं जो उनकी ओर से कार्य करेंगे और उनकी ओर से निर्णय लेंगे । भारतीय संविधान का अनुच्छेद 326 वयस्क मताधिकार का प्रावधान करता है, जो 18 वर्ष से अधिक आयु के प्रत्येक नागरिक को वोट देने का अधिकार देता है, इस प्रकार लोकसभा (लोगों का सदन) और राज्य विधानसभाओं के लिए प्रतिनिधियों को चुनने की एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त, संविधान स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के संचालन के लिए विशिष्ट दिशानिर्देश देता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि चुनावी प्रक्रिया पारदर्शी और समावेशी बनी रहे । भारतीय संविधान सरकार का एक संसदीय स्वरूप भी स्थापित करता है, जिसमें प्रधान मंत्री और मुख्यमंत्रियों को संबंधित विधानमंडल में बहुमत दल से चुना जाता है। यह निर्वाचित प्रतिनिधियों और कार्यपालिका के बीच सीधे संबंध को बढ़ावा देता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि नीतियां और निर्णय लोगों की इच्छा और जनादेश को प्रतिबिंबित करते हैं। इसके अतिरिक्त, संविधान निर्वाचित प्रतिनिधियों को जवाबदेह रखने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, जनहित याचिकाएं और स्वतंत्र न्यायपालिका जैसे विभिन्न तंत्र प्रदान करता है ।

**2.5.8 राजनैतिक , आर्थिक , सामाजिक न्याय की संकल्पना-** भारतीय संविधान राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले मौलिक सिद्धांतों के रूप में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को शामिल करता है। ये सिद्धांत मौलिक अधिकारों, निदेशक सिद्धांतों और संविधान के

समग्र ढांचे सहित विभिन्न प्रावधानों में निहित हैं। यहां प्रत्येक अवधारणा का अवलोकन दिया गया है:

2.5.8.1 **राजनीतिक न्याय**- संविधान अपने नागरिकों को कई मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है, जैसे समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14), बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19), वोट देने का अधिकार (अनुच्छेद 326), और संवैधानिक उपचारों का अधिकार ( अनुच्छेद 32). ये अधिकार राजनीतिक समानता, भागीदारी और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार: अनुच्छेद 326 राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करते हुए, जाति, पंथ, धर्म या लिंग की परवाह किए बिना सभी वयस्क नागरिकों को वोट देने का अधिकार देता हैं।

2.5.8.2 **आर्थिक न्याय -** संविधान में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत (दी पीएसपी) शामिल हैं, जो समाज में आर्थिक और सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए सरकार के लिए दिशानिर्देश हैं। समान काम के लिए समान वेतन (अनुच्छेद 39(दी )), जीवनयापन मजदूरी (अनुच्छेद 43), और श्रमिकों की सुरक्षा (अनुच्छेद 43ए) जैसे दी पीएसपी आर्थिक न्याय को बढ़ावा देते हैं। भूमि सुधार: संविधान राज्य को भूमि और संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित करने, सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों के उत्थान के लिए भूमि सुधार कानून बनाने का अधिकार देता है (अनुच्छेद 39 (बी) और (सी)।

2.5.8.3 **सामाजिक न्याय** समानता : संविधान कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है (अनुच्छेद 14) और जाति, धर्म, नस्ल, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है (अनुच्छेद 15)। आरक्षण प्रणाली ऐतिहासिक रूप से वंचित समूहों के लिए सकारात्मक कार्रवाई प्रदान करके सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए भी लागू है। समाज कल्याण : दी पीएसपी राज्य को शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21ए), सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार (अनुच्छेद 47), कमजोर वर्गों के कल्याण को बढ़ावा देने (अनुच्छेद 46), और अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की रक्षा (अनुच्छेद) की दिशा में काम करने का निर्देश देता है। 29 और 30). भारतीय संविधान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक न्याय की परस्पर निर्भरता को मान्यता देता है और एक न्यायपूर्ण और समतावादी

समाज का लक्ष्य रखता है। यह सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने और ऐतिहासिक असमानताओं को संबोधित करने में राज्य की भूमिका पर जोर देते हुए व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता के महत्व को स्वीकार करता है। हालाँकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इन सिद्धांतों का कार्यान्वयन और व्यवहार में न्याय की प्राप्ति चल रही चुनौतियाँ हैं और सामाजिक और राजनीतिक गतिशीलता के अधीन हैं।

## 2.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1: भारतीय संविधान में "प्रस्तावना" का क्या महत्व है?

अ) यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों को रेखांकित करता है

ब) यह सरकार की संरचना और कार्यों को निर्धारित करता है

स) यह भारत के लोगों की आकांक्षाओं और आदर्शों को दर्शाता है

द) यह राज्य की नीतियों के लिए निदेशक सिद्धांतों को सूचीबद्ध करता है

प्रश्न 2 : भारतीय संविधान का कौन सा सिद्धांत कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों के पृथक्करण पर जोर देता है?

अ) संसदीय संप्रभुता ब) कानून का शासन

स) न्यायिक समीक्षा द) शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत

प्रश्न 3: भारतीय संविधान का कौन सा अनुच्छेद सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है?

अ) अनुच्छेद 15 ब) अनुच्छेद 21

स) अनुच्छेद 25 द) अनुच्छेद 32

प्रश्न 4: भारतीय संविधान में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का प्राथमिक उद्देश्य क्या है?

अ) भारत में एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना ब) संसद में समान प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना

स) नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करना द) राष्ट्रपति की शक्ति को मजबूत करना

## 2.7 सारांश

"भारतीय संविधान का दर्शन" शीर्षक वाला यह अध्याय उन अंतर्निहित सिद्धांतों और आदर्शों की पड़ताल करता है जो देश के सर्वोच्च कानूनी दस्तावेज़ को आकार देते हैं। यह उन मूल मूल्यों और आकांक्षाओं पर प्रकाश डालता है जिन पर भारतीय संविधान का निर्माण किया गया है, जो इसके दार्शनिक आधारों की गहन समझ प्रदान करता है। अध्याय की शुरुआत संप्रभुता के विचार की पड़ताल से होती है, जो लोकतांत्रिकता, धर्मनिरपेक्षता और राजनीतिक , सामाजिक , आर्थिक न्याय के महत्व पर प्रकाश डालता है। यह पता लगाता है कि कैसे संविधान भारत को एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्थापित करता है, जिससे देश की नियति को आकार देने में अपने नागरिकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित होती है। अध्याय भारतीय संविधान के दर्शन को साकार करने में मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों द्वारा निभाई गई संक्षिप्त परन्तु महत्वपूर्ण भूमिका की भी चर्चा करता है। यह पता लगाता है कि कैसे मौलिक अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं और न्याय के सिद्धांतों को कायम रखते हैं, जबकि निर्देशक सिद्धांत राज्य को सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों को आगे बढ़ाने और एक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज बनाने में मार्गदर्शन करते हैं। निष्कर्ष के तौर पर, "भारतीय संविधान का दर्शन" अध्याय भारत के संवैधानिक ढांचे को रेखांकित करने वाले मूलभूत सिद्धांतों की एक व्यावहारिक खोज प्रदान करता है। यह लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और सामाजिक न्याय के मूल्यों पर प्रकाश डालता है, जो सामूहिक रूप से एक जीवंत, समावेशी और प्रगतिशील राष्ट्र की दृष्टि को आकार देते हैं। भारतीय संविधान की भावना और इरादे और इसके नागरिकों के जीवन पर इसके स्थायी प्रभाव को समझने के लिए इस दर्शन को समझना आवश्यक है।

## 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1. स** **2. द** **3. स** **4. अ**

## 2.9 शब्दावली

**संप्रवर्तन** – कोई नया कार्य आरंभ करना , प्रवृत्त करना

**अभिप्रेरित** – प्रेरित करना या होना , प्रेरणा देना

## 2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

"हमारा संविधान: भारत के संविधान और संवैधानिक कानून का परिचय": सुभाष सी. कश्यप ,नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत

“भारतीय संविधान का दर्शन: एक चयन संकलन", सुजीत चौधरी, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

“भारतीय संविधान की राजनीति और नैतिकता”, राजीव भार्गव ,ऑक्सफोर्ड इंडिया द्वारा संपादन

## 2.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

“आइडिया ऑफ़ जस्टिस” , अमर्त्य सेन , हॉवर्ड विश्विद्यालय प्रेस

“भारत का स्वाधीनता संघर्ष” , विपिन चन्द्र , पेंगुइन इंडिया

## 2.12 निबंधात्मक प्रश्न

अ) प्रस्तावना में निहित दार्शनिक आदर्शों का विश्लेषण करें। न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और गरिमा जैसे आदर्श अन्य संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या और कार्यान्वयन को कैसे निर्देशित करते हैं ?

ब) भारत की संवैधानिक भावना को आकार देने में प्रस्तावना के महत्व पर चर्चा करें।

स) भारतीय संविधान के दर्शन के मूलभूत पहलू के रूप में "विविधता में एकता" की अवधारणा पर चर्चा करें।

द) भारतीय संविधान की प्रस्तावना संपूर्ण दस्तावेज़ की आत्मा और सार के रूप में कार्य करती है। टिप्पणी करें।

# इकाई 3 संविधान की प्रस्तावना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 भारतीय संविधान की प्रस्तावना का ऐतिहासिक संदर्भ और विकास

3.3 भारतीय संविधान की प्रस्तावना के महत्व

3.4 भारतीय संविधान की प्रस्तावना

**3.5** प्रस्तावना के मूल तत्व

3.5.1 न्याय

3.5.2 स्वतंत्रता

3.5.3 समानता

3.5.4 बंधुत्व

3.6 विभिन्न मामलों द्वारा प्रस्तावना की स्थिति की व्याख्या

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक उपयोगी सामग्री

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 3.0 प्रस्तावना

भारतीय संविधान की प्रस्तावना राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले मौलिक सिद्धांतों, उद्देश्यों और मूल्यों को रेखांकित करते हुए परिचयात्मक कथन के रूप में कार्य करती है। यह संक्षेप में संवैधानिक ढांचे के सार को ग्रहण करता है और दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के शासन की नींव रखता है। अपनी दूरदर्शी आकांक्षाओं और प्रगतिशील आदर्शों के साथ, प्रस्तावना भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक ताने-बाने के सार का प्रतीक है, जो इसकी विविध आबादी की आकांक्षाओं और लक्ष्यों को दर्शाती है। यह निबंध प्रस्तावना के महत्व की पड़ताल करता है और इसमें समाहित मूल मूल्यों की पड़ताल करता है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना एक शक्तिशाली और विचारोत्तेजक उद्घाटन वक्तव्य के रूप में है जो भूमि के सर्वोच्च कानून के स्वर और उद्देश्य को निर्धारित करता है। यह भारतीय लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को दर्शाते हुए, संविधान निर्माताओं की सामूहिक दृष्टि और आकांक्षाओं की संक्षिप्त और गहन अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करता है। प्रस्तावना उन मूलभूत सिद्धांतों, मूल्यों और उद्देश्यों को समाहित करती है जो भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली का आधार बनते हैं, जो राष्ट्र के शासन के लिए एक मार्गदर्शक ढांचा प्रदान करते हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना परिवर्तनकारी शब्दों से शुरू होती है, "हम, भारत के लोग।" यह प्रारंभिक वाक्यांश राष्ट्र की नियति को आकार देने में लोगों की संप्रभुता और अंतिम अधिकार पर जोर देता है। यह दावा करता है कि शक्ति नागरिकों के पास है, और संविधान उनकी इच्छा और सहमति की अभिव्यक्ति है।

प्रस्तावना उन मूलभूत मूल्यों को स्पष्ट करती है जिन्हें भारत बनाए रखना चाहता है: न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। ये चार स्तंभ भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के व्यापक लक्ष्यों को समाहित करते हैं। न्याय, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय शामिल है, का उद्देश्य निष्पक्षता, समान अवसर और भेदभाव का उन्मूलन सुनिश्चित करना है। स्वतंत्रता भाषण, अभिव्यक्ति, धर्म और आंदोलन की स्वतंत्रता सहित व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण को रेखांकित करती है। समानता सभी प्रकार की असमानता और भेदभाव के उन्मूलन पर जोर देती है, सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों और अवसरों को बढ़ावा देती है। भ्रातृत्व भारत के विविध लोगों के बीच भाईचारे, एकता और अपनेपन की भावना का प्रतीक है।

इस इकाई के अंतर्गत हम भारतीय संविधान की प्रस्तावना के महत्व और उसके मूल्यों का अध्ययन करेंगें।

## 3.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भारतीय संविधान की प्रस्तावना के विभिन्न मूल्यों और लक्ष्यों की व्याख्या करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना का ऐतिहासिक संदर्भ और विकास को जान सकेंगे।
2. भारतीय संविधान की प्रस्तावना के महत्व को समझ सकेंगे।
3. प्रस्तावना की पृष्ठभूमि और इसके मूलभूत तत्वों का अध्ययन करेंगें।

## 3.2 भारतीय संविधान की प्रस्तावना का ऐतिहासिक संदर्भ और विकास

भारतीय संविधान और इसकी प्रस्तावना का निर्माण ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता के लिए भारत के संघर्ष द्वारा आकारित एक विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और संविधान सभा के नेताओं के बीच गहन बहस, विचार-विमर्श और परामर्श द्वारा संविधान तैयार करने की प्रक्रिया को चिह्नित किया गया था। प्रस्तावना के ऐतिहासिक संदर्भ और विकास को निम्नलिखित प्रमुख बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

**उद्देश्य संकल्प और इसका प्रभाव:** संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए जिम्मेदार संविधान सभा ने 22 जनवरी 1947 को "उद्देश्य संकल्प" को अपनाया, जिसने भविष्य के संविधान की आकांक्षाओं और लक्ष्यों को रेखांकित किया। जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किए गए इस प्रस्ताव ने न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों पर जोर देकर प्रस्तावना की नींव रखी। बाद की प्रारूपण प्रक्रिया के दौरान इसने एक महत्वपूर्ण प्रभाव के रूप में कार्य किया।

**संविधान सभा में विचार-विमर्श:** संविधान सभा, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों, समुदायों और राजनीतिक विचारधाराओं के निर्वाचित प्रतिनिधि शामिल थे, संवैधानिक ढांचे को आकार देने के लिए कठोर चर्चा और बहस में लगी हुई थी। बी.आर. अम्बेडकर, जिन्होंने मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया, ने प्रस्तावना को आकार देने और राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले सिद्धांतों और मूल्यों को शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के संविधान और घोषणाओं का प्रभाव:** भारतीय संविधान के निर्माताओं ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान और अन्य लोकतांत्रिक राष्ट्रों के संविधान सहित विभिन्न अंतरराष्ट्रीय स्रोतों से प्रेरणा प्राप्त की। इन दस्तावेजों ने

भारतीय संविधान और इसकी प्रस्तावना में स्थापित किए जाने वाले सिद्धांतों और मूल्यों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान की।

**"समाजवाद" और "धर्मनिरपेक्षता" को शामिल करने पर बहस:** संविधान सभा में बहस के दौरान इस बात पर चर्चा हुई कि प्रस्तावना में "समाजवाद" और "धर्मनिरपेक्षता" जैसे विशिष्ट शब्दों को शामिल किया जाए या नहीं। अंततः, प्रस्तावना के मूल पाठ में इन शब्दों का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया था। हालाँकि, बाद के संवैधानिक संशोधनों और न्यायिक व्याख्याओं के माध्यम से, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों को बरकरार रखा गया है और भारतीय संवैधानिक ढांचे में प्रभाव दिया गया है।

**प्रस्तावना को अपनाना:** व्यापक विचार-विमर्श और विचार-विमर्श के बाद, 26 नवंबर 1949 को भारतीय संविधान की प्रस्तावना को अपनाया गया था। यह एक स्वतंत्र भारत की स्थापना की यात्रा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था जिसने लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बरकरार रखा, मौलिक अधिकारों की रक्षा की और एक न्यायपूर्ण और समावेशी समाज का निर्माण करने का लक्ष्य रखा। .

**संवैधानिक संशोधन और न्यायिक व्याख्या के माध्यम से विकास:** इसके अपनाने के बाद से, प्रस्तावना संवैधानिक संशोधनों और न्यायिक व्याख्याओं के माध्यम से विकसित हुई है। मौलिक अधिकारों के दायरे का विस्तार करने, विशिष्ट सिद्धांतों को शामिल करने और राष्ट्र की बदलती जरूरतों और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने के लिए संवैधानिक संशोधन किए गए हैं। भारतीय न्यायपालिका ने प्रस्तावना को संविधान का एक अभिन्न अंग मानते हुए इसकी व्याख्या करने और इसे संवैधानिक सिद्धांतों और मूल्यों की रक्षा करने और आगे बढ़ाने के लिए एक उपकरण के रूप में उपयोग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

## 3.3 भारतीय संविधान की प्रस्तावना के महत्व

भारतीय संविधान की प्रस्तावना सर्वोपरि है क्योंकि यह राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले मूलभूत मूल्यों, उद्देश्यों और आकांक्षाओं को समाहित करती है। यह लोकतांत्रिक सिद्धांतों, सामाजिक न्याय और समावेशिता के एक वसीयतनामा के रूप में खड़ा है जिसे भारत हासिल करना चाहता है। प्रस्तावना एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती है, जो राष्ट्र को एक ऐसे समाज की ओर निर्देशित करती है जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों को बनाए रखता है और अपने नागरिकों के अधिकारों और जिम्मेदारियों को पुष्ट करता है।

**नागरिकों की संप्रभुता को व्यक्त करना:** प्रस्तावना के शुरुआती शब्द, "हम, भारत के लोग," मौलिक सिद्धांत स्थापित करते हैं कि सत्ता नागरिकों के पास है। यह इस बात पर जोर देता है कि

संविधान लोगों से अपना अधिकार प्राप्त करता है और राष्ट्र की नियति को आकार देने में उनकी भूमिका की याद दिलाता है। लोगों को केंद्र में रखकर, प्रस्तावना भारतीय राजनीति की लोकतांत्रिक प्रकृति पर प्रकाश डालती है।

**प्रस्तावना में सम्मिलित मुख्य मूल्य:** प्रस्तावना न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल मूल्यों को रेखांकित करती है, जो भारतीय संविधान का आधार है। ये मूल्य महज आकांक्षाएं नहीं हैं, बल्कि इन्हें मौलिक अधिकार माना जाता है, जिसका हर नागरिक हकदार है। इन मूल्यों की प्रस्तावना की अभिव्यक्ति एक ऐसे समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता की पुष्टि करती है जो न्याय को बनाए रखता है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को संरक्षित करता है, समानता सुनिश्चित करता है और भाईचारे की भावना को बढ़ावा देता है।

**विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत:** प्रस्तावना सरकार की सभी शाखाओं - विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के लिए एक मार्गदर्शक दस्तावेज के रूप में कार्य करती है। यह कानून निर्माताओं, नीति निर्माताओं और न्यायाधीशों को संविधान के प्रावधानों को अपने आदर्शों के अनुरूप व्याख्या करने और लागू करने के लिए एक ढांचा प्रदान करता है। प्रस्तावना के मूल्य एक कम्पास के रूप में कार्य करते हैं, सरकार के कार्यों को लोगों के कल्याण और भलाई के लिए निर्देशित करते हैं।

**सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा:** प्रस्तावना एक प्रेरक दस्तावेज के रूप में कार्य करती है, जो सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन को संचालित करती है। यह एक न्यायसंगत और समतावादी समाज के लिए दृष्टिकोण निर्धारित करता है और नागरिकों को इसकी प्राप्ति की दिशा में काम करने के लिए प्रेरित करता है। प्रस्तावना के उदात्त आदर्शों ने सामाजिक असमानताओं को दूर करने, भेदभाव से लड़ने और वंचित समुदायों के उत्थान के उद्देश्य से विभिन्न सामाजिक आंदोलनों और सुधारों को प्रेरित किया है।

**संवैधानिक पहचान और एकता:** प्रस्तावना भारत की संवैधानिक पहचान को परिभाषित करते हुए एक एकीकृत शक्ति के रूप में कार्य करती है। यह एकता और बंधुत्व के सिद्धांतों पर जोर देते हुए देश की विविध सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई विविधता को पहचानता है और स्वीकार करता है। अपने नागरिकों की अनूठी पहचान को स्वीकार करते हुए, प्रस्तावना एक सामंजस्यपूर्ण और बहुलतावादी समाज के निर्माण की दिशा में समावेशिता और सामूहिक जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देती है।

**संवैधानिक अधिकारों की व्याख्या और संरक्षण:** प्रस्तावना न्यायिक व्याख्या और संवैधानिक अधिकारों के संरक्षण में अत्यधिक महत्व रखती है। मौलिक अधिकारों के दायरे की व्याख्या और विस्तार करने, उनके प्रवर्तन और सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए अदालतों ने अक्सर प्रस्तावना पर

भरोसा किया है। यह न्यायालयों के लिए संविधान की मंशा और भावना का पता लगाने के लिए एक संदर्भ बिंदु के रूप में कार्य करता है, जिससे वे कानून और न्याय के मामलों में सूचित निर्णय लेने में सक्षम होते हैं।

## 3.4 भारतीय संविधान की प्रस्तावना

*हम भारत के लोग, भारत को एक* ***संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न,***

***समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य***

*बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:*

*सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक* ***न्याय,***

*विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास,धर्म और उपासना की* ***स्वतंत्रता,***

*प्रतिष्ठा और अवसर की* ***समता***

*प्राप्त करने के लिए,*

*तथा उन* ***सब में*** *व्यक्ति की गरिमा और* ***राष्ट्र की एकता और अखंडता***

***सुनिश्चित*** *करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए*

*दृढ़संकल्प होकर* ***अपनी इस संविधान सभा में*** *आज*

*तारीख 26 नवम्बर,1949 ई. (मिति मार्गशीष शुक्ला*

*सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को एतत् द्वारा*

***इस संविधान को अंगीकृत,अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं"।***

## 3.5 भारतीय संविधान की प्रस्तावना के मूल तत्व:

**भारत के संविधान की प्रस्तावना के प्रमुख तत्वों के साथ-साथ उनके संबंधित संवैधानिक मूल्यों पर विस्तार से चर्चा की गए है:**

**3.5.1 न्याय:** प्रस्तावना में न्याय का मूल्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को शामिल करता है। यह एक न्यायपूर्ण और निष्पक्ष समाज की स्थापना पर जोर देता है जहां प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार किया जाता है। न्याय से जुड़े संवैधानिक मूल्यों में शामिल हैं:

**(अ) सामाजिक न्याय:** सामाजिक न्याय का तात्पर्य समाज के भीतर संसाधनों, अवसरों और लाभों के उचित और समान वितरण से है। इसका उद्देश्य जाति, लिंग, धर्म और आर्थिक स्थिति जैसे कारकों के आधार पर मौजूद ऐतिहासिक और प्रणालीगत असमानताओं को दूर करना है। सामाजिक न्याय की अवधारणा में शामिल हैं:

**अवसरों तक समान पहुंच:** यह सुनिश्चित करना कि सभी व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक सेवाओं के लिए समान अवसर प्राप्त हों।

**उपेक्षित समूहों का संरक्षण:** उपेक्षित समुदायों द्वारा सामना किए जाने वाले सामाजिक नुकसान को संबोधित करना और उनका समावेश और सशक्तिकरण सुनिश्चित करना।

**भेदभाव का उन्मूलन:** एक ऐसे समाज को बढ़ावा देना जो जाति, लिंग, धर्म या किसी अन्य पहचान के आधार पर भेदभाव से मुक्त हो।

**(ब) आर्थिक न्याय:** आर्थिक न्याय धन, संसाधनों और आर्थिक अवसरों के समान वितरण को प्राप्त करने पर केंद्रित है। इसका उद्देश्य गरीबी को कम करना, आर्थिक असमानताओं को कम करना और सभी व्यक्तियों के लिए एक सम्मानित जीवन स्तर सुनिश्चित करना है। आर्थिक न्याय की अवधारणा में शामिल हैं:

**संसाधनों का समान वितरण:** यह सुनिश्चित करना कि संसाधन, जैसे कि भूमि, प्राकृतिक संसाधन और बुनियादी ढाँचा, निष्पक्ष रूप से और इस तरह से वितरित किए जाते हैं जिससे समाज के सभी वर्गों को लाभ हो।

**गरीबी उन्मूलन:** गरीबी उन्मूलन के लिए नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करना और वंचितों को आर्थिक सहायता और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

**श्रम अधिकार:** श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करना, उचित मजदूरी सुनिश्चित करना, सुरक्षित काम करने की स्थिति और सामाजिक सुरक्षा और लाभों तक पहुंच सुनिश्चित करना। ।

**(स) राजनीतिक न्याय:** राजनीतिक न्याय एक देश की राजनीतिक प्रक्रियाओं और संस्थानों में सभी व्यक्तियों के निष्पक्ष और समान प्रतिनिधित्व और भागीदारी को संदर्भित करता है। यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय लेने और शासन में प्रत्येक नागरिक की समान आवाज हो। राजनीतिक न्याय की अवधारणा में शामिल हैं:

**सार्वभौमिक मताधिकार:** जाति, लिंग, धर्म या किसी अन्य पहचान के बावजूद स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव में भाग लेने और वोट देने के अधिकार की गारंटी।

**सीमांत समूहों का प्रतिनिधित्व:** विधायी निकायों और निर्णय लेने वाले निकायों में हाशिए के समुदायों, महिलाओं और समाज के अन्य कम प्रतिनिधित्व वाले वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना।

**न्याय तक पहुंच:** न्यायिक प्रणाली तक समान पहुंच प्रदान करना, यह सुनिश्चित करना कि सभी नागरिकों के लिए न्याय सुलभ है, चाहे उनकी सामाजिक या आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो।

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय परस्पर जुड़े हुए और अन्योन्याश्रित हैं। वे एक न्यायसंगत और समतामूलक समाज बनाने में एक दूसरे के पूरक हैं। सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए आर्थिक असमानताओं को दूर करने और समान अवसर प्रदान करने की आवश्यकता होती है, जबकि राजनीतिक न्याय समाज को नियंत्रित करने वाली नीतियों और कानूनों को आकार देने में सभी व्यक्तियों की भागीदारी और प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता है। साथ में, ये अवधारणाएँ एक ऐसे समाज की नींव बनाती हैं जो न्याय, समानता और समावेशिता के सिद्धांतों को कायम रखता है।

**3.5.2 स्वतन्त्रता:** प्रस्तावना में स्वतंत्रता का मूल्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों के संरक्षण को दर्शाता है। इसका उद्देश्य नागरिकों को अन्यायपूर्ण प्रतिबंधों के बिना अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिए सुरक्षित और सशक्त बनाना है। स्वतंत्रता से जुड़े संवैधानिक मूल्यों में शामिल हैं:

**(अ) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता:**

भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, स्वतंत्रता का एक मूलभूत पहलू है। यह व्यक्तियों को सेंसरशिप या प्रतिशोध के डर के बिना स्वतंत्र रूप से अपनी राय, विचार और विश्वास व्यक्त करने के अधिकार की गारंटी देता है। इसमें असहमति व्यक्त करने, सरकार की आलोचना करने, सार्वजनिक बहस में भाग लेने और सूचना तक पहुँचने का अधिकार शामिल है। एक जीवंत लोकतंत्र, सार्वजनिक संवाद को

बढ़ावा देने और विविध दृष्टिकोणों के आदान-प्रदान के लिए भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आवश्यक है।

**(ब) धर्म की स्वतंत्रता:**

प्रस्तावना धर्म की स्वतंत्रता के संदर्भ में स्वतंत्रता के मूल्य को स्वीकार करती है। यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्तियों को अपनी पसंद के किसी भी धर्म या आस्था का अभ्यास करने और मानने का अधिकार है। इसमें पूजा करने, धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करने और अपने धर्म का प्रचार करने की स्वतंत्रता शामिल है। धर्म की स्वतंत्रता धार्मिक सहिष्णुता, बहुलवाद और व्यक्तिगत विश्वासों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देती है, सभी नागरिकों के अपने धार्मिक विश्वासों का पालन करने के अधिकारों की रक्षा करती है।

**(स) व्यक्तिगत स्वतंत्रताएँ:**

प्रस्तावना में स्वतंत्रता की अवधारणा में विभिन्न व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकार शामिल हैं जो व्यक्तियों की स्वायत्तता और गरिमा की रक्षा करते हैं। कुछ प्रमुख व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं में शामिल हैं:

**आवागमन की स्वतंत्रता:** देश के भीतर स्वतंत्र रूप से आने-जाने और क्षेत्र के किसी भी हिस्से में निवास करने का अधिकार।

**निजता का अधिकार:** निजता का अधिकार व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा, अवांछित निगरानी से मुक्ति और अनुचित हस्तक्षेप के बिना चुनाव करने का अधिकार सुनिश्चित करता है।

**विचार और विवेक की स्वतंत्रता:** बिना किसी दबाव या थोपे व्यक्तिगत विश्वासों, विचारों और विश्वासों को धारण करने का अधिकार।

**जीवन और व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार:** जीवन और व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार जीवन के मनमाने वंचन या शारीरिक नुकसान से सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

**3.5.3. समानता:**

प्रस्तावना में समानता का मूल्य भेदभाव के उन्मूलन और सभी नागरिकों के लिए समान अवसरों को बढ़ावा देने पर जोर देता है। यह एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जहां प्रत्येक व्यक्ति के साथ सम्मान के साथ व्यवहार किया जाए और संसाधनों और अवसरों तक समान पहुंच हो। समानता से जुड़े संवैधानिक मूल्यों में शामिल हैं:

**(अ) कानून के समक्ष समानता:**

कानून के समक्ष समानता का सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि सभी व्यक्तियों, उनकी जाति, पंथ, लिंग, धर्म या किसी अन्य पहचान के बावजूद, कानून की नजर में समान व्यवहार किया जाता है। इसका मतलब है कि हर कोई समान कानूनों के अधीन है और अपने अधिकारों के समान संरक्षण और प्रवर्तन का आनंद लेता है। यह सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि कोई भी कानून से ऊपर नहीं है और निष्पक्ष रूप से न्याय किया जाता है।

**(ब) लैंगिक समानता:**

लैंगिक समानता प्रस्तावना में उल्लिखित समानता का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसका उद्देश्य लिंग के आधार पर भेदभाव को खत्म करना है और सभी लिंगों के लिए समान अवसरों और अधिकारों को बढ़ावा देना है।

**(स) समान अवसर:**

प्रस्तावना समान अवसर के सिद्धांत पर जोर देती है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक नागरिक को जीवन के विभिन्न पहलुओं में सफल होने और उत्कृष्टता प्राप्त करने का समान अवसर मिलना चाहिए। इसमें शामिल है:

**रोजगार के समान अवसर:** यह सुनिश्चित करना कि जाति, धर्म, लिंग या विकलांगता जैसे कारकों के आधार पर व्यक्तियों के साथ रोजगार में भेदभाव नहीं किया जाता है।

**शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच:** यह सुनिश्चित करना कि बिना किसी भेदभाव के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक सेवाओं तक सभी नागरिकों की समान पहुंच हो।

**सकारात्मक कार्रवाई:** सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देने के लिए आरक्षण और कोटा जैसी नीतियों के माध्यम से समाज के सीमांत और वंचित वर्गों के उत्थान के लिए सक्रिय उपाय करना।

**(द) सामाजिक और आर्थिक समानता:**

प्रस्तावना सामाजिक और आर्थिक समानता के महत्व को पहचानती है। इसका उद्देश्य समाज के विशेषाधिकार प्राप्त और वंचित वर्गों के बीच की खाई को पाटना है। यह भी शामिल है:

**संसाधनों का समान वितरण:** सामाजिक-आर्थिक विषमताओं को कम करने के लिए धन, आय और संसाधनों का उचित वितरण सुनिश्चित करना।

**सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन:** अस्पृश्यता, जातिगत भेदभाव और सामाजिक अन्याय के अन्य रूपों जैसे सामाजिक मुद्दों को संबोधित करना।

**कल्याणकारी उपाय:** आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों और नीतियों को लागू करना, समावेशी विकास को बढ़ावा देना और कमजोर आबादी के लिए सुरक्षा जाल प्रदान करना।

### 3.5.4: बंधुता

भ्रातृत्व, जैसा कि प्रस्तावना में उल्लेख किया गया है, भारत के विविध लोगों के बीच भाईचारे, एकता और अपनेपन की भावना को दर्शाता है। यह एक सामंजस्यपूर्ण और समावेशी समाज को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर जोर देता है जहां सभी व्यक्ति जाति, धर्म, भाषा और अन्य पहचानों की बाधाओं को पार करते हुए एक दूसरे का सम्मान और देखभाल करते हैं। भाईचारा सामाजिक एकता, राष्ट्रीय एकता और सामूहिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रस्तावना में भाईचारे के प्रमुख तत्वों में शामिल हैं:

**(अ) अनेकता में एकता:**

भाईचारा भारत में मौजूद संस्कृतियों, भाषाओं, धर्मों और परंपराओं की समृद्ध विविधता को पहचानता है और उसका जश्न मनाता है। यह इस बात पर बल देता है कि इन विभिन्नताओं के बावजूद, सभी नागरिक समान हैं और उनके साथ सम्मान और सम्मान के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए। विविधता में एकता का सिद्धांत एक मजबूत और एकजुट राष्ट्र को बढ़ावा देने, समावेश और सद्भाव की भावना को बढ़ावा देता है।

**(ब) सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व:**

भाईचारा व्यक्तियों और समुदायों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और आपसी सम्मान के महत्व पर जोर देता है। यह नागरिकों को विभिन्न दृष्टिकोणों, संस्कृतियों और विश्वासों की सराहना करने और समझने के लिए प्रोत्साहित करता है। सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व को बढ़ावा देकर, भाईचारा संघर्षों को रोकने और सहिष्णुता और स्वीकृति का माहौल बनाने की कोशिश करता है।

**(स) साझा जिम्मेदारी:**

भ्रातृत्व इस विचार पर प्रकाश डालता है कि सभी नागरिकों की समाज की भलाई के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी है। यह व्यक्तियों से सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने, न्याय को बढ़ावा देने और सामान्य

भलाई को बनाए रखने के लिए मिलकर काम करने का आह्वान करता है। यह साझा जिम्मेदारी एकजुटता की भावना को बढ़ावा देती है और नागरिकों को राष्ट्र के कल्याण में सक्रिय रूप से योगदान करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

**(द) सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना:**

भाईचारा सामाजिक न्याय की खोज से निकटता से जुड़ा हुआ है। यह समाज के हाशिए और वंचित वर्गों के उत्थान की आवश्यकता पर बल देता है, यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी पीछे न रहे। भ्रातृत्व सहानुभूति, करुणा और एक ऐसा समाज बनाने की प्रतिबद्धता को बढ़ावा देता है जहां सभी व्यक्तियों के पास समान अवसर और संसाधनों तक पहुंच हो।

**(घ) एकीकरण और राष्ट्र निर्माण:**

बंधुता अपनेपन और राष्ट्रीय पहचान की भावना को बढ़ावा देकर राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह इस विचार को बढ़ावा देता है कि सभी नागरिक एक बड़े समूह का हिस्सा हैं और उन्हें राष्ट्र के सामान्य लक्ष्यों और विकास की दिशा में काम करना चाहिए। भ्रातृत्व नागरिकों को व्यक्तिगत हितों को छोड़कर देश की समग्र प्रगति और समृद्धि की दिशा में काम करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

## 3.6. विभिन्न मामलों द्वारा प्रस्तावना की स्थिति की व्याख्या

न्यायपालिका द्वारा विभिन्न मामलों में भारतीय संविधान की प्रस्तावना की स्थिति पर चर्चा की गई है। यहाँ कुछ उल्लेखनीय मामले हैं जो प्रस्तावना की व्याख्या और महत्व पर प्रकाश डालते हैं:

**केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973):**

इस ऐतिहासिक मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि प्रस्तावना संविधान का एक अभिन्न अंग है और इसे संविधान निर्माताओं के दिमाग को खोलने की कुंजी माना जा सकता है। अदालत ने फैसला सुनाया कि प्रस्तावना को संविधान के प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए एक गाइड के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

**एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994):**

इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि प्रस्तावना संविधान की मूल विशेषताओं और संरचना का प्रतीक है। अदालत ने कहा कि संविधान की मूल विशेषताओं का खंडन करने वाली कोई भी

कार्रवाई या कानून, जैसा कि प्रस्तावना में परिलक्षित होता है, को असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है।

**एलआईसी ऑफ इंडिया बनाम उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केंद्र (1995):**

इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना संविधान के लक्ष्यों और उद्देश्यों को इंगित करती है और मूल संरचना या भावना प्रदान करती है जिसमें संविधान की व्याख्या की जानी है। अदालत ने जोर देकर कहा कि प्रस्तावना संविधान के दर्शन और आदर्शों को दर्शाती है और इसके प्रावधानों को समझने के लिए आवश्यक है।

**भारत संघ बनाम मद्रास बार एसोसिएशन (2010):**

इस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि प्रस्तावना भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और गणतंत्र राष्ट्र बनाने के लिए भारत के लोगों के गंभीर संकल्प की घोषणा करती है। अदालत ने कहा कि प्रस्तावना लोगों की आकांक्षाओं और लक्ष्यों का प्रतिनिधित्व करती है और संविधान की व्याख्या में एक मूल्यवान सहायता के रूप में कार्य करती है।

ये मामले भारतीय संविधान के एक अनिवार्य भाग के रूप में प्रस्तावना के महत्व और स्थिति को उजागर करते हैं। न्यायपालिका ने प्रस्तावना को एक मार्गदर्शक दस्तावेज के रूप में मान्यता दी है जो संविधान के मूल्यों, आकांक्षाओं और बुनियादी संरचना को दर्शाती है, और इसका उपयोग संविधान में निहित सिद्धांतों को समझने और बनाए रखने के लिए एक व्याख्यात्मक उपकरण के रूप में किया जा सकता है।

### 3.7 अभ्यास प्रश्न

**1.** प्रस्तावना निम्नलिखित की आकांक्षाओं को दर्शाती है:

(अ) राष्ट्रपति (ब) प्रधान मंत्री (स) भारत के लोग (द) उच्चतम न्यायालय

**2.** प्रस्तावना सुरक्षित करने का प्रयास करती है:

(अ) राजनीतिक शक्ति (ब) आर्थिक विशेषाधिकार

(स) सामाजिक और आर्थिक न्याय (द) सैन्य वर्चस्व

3. प्रस्तावना भारतीय संविधान की प्रतिबद्धता को दर्शाती है:

(अ) राजतंत्र की स्थापना करना (ब) आर्थिक असमानता सुनिश्चित करें

(स) निरंकुशता को बढ़ावा देना (द) लोकतांत्रिक आदर्शों को कायम रखना

4. प्रस्तावना में "संप्रभु" शब्द का अर्थ है:

(अ) बाहरी नियंत्रण से मुक्ति (ब) राष्ट्रपति की पूर्ण शक्ति

(स) शक्तियों का पृथक्करण (द) धार्मिक अधिकार

## 3.8 सारांश

भारतीय संविधान की प्रस्तावना राष्ट्र की सामूहिक इच्छा है। यह उन मूलभूत सिद्धांतों और आदर्शों को प्रतिबिंबित करता है जो भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में मार्गदर्शन करते हैं, जो अपने सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध है। प्रस्तावना एक मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में कार्य करती है, जो देश को अधिक समावेशी, सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील समाज की दिशा में लगातार प्रयास करने के लिए प्रेरित करती है। यह संविधान निर्माताओं के दृष्टिकोण का एक प्रमाण बना हुआ है और न्यायपालिका द्वारा भारत के लोकतांत्रिक ढांचे के मूलभूत स्तंभ के रूप में इसकी व्याख्या और समर्थन किया जाना जारी है।

## 3.9 शब्दावली

**गणतंत्र:** सरकार की एक प्रणाली जहां राज्य का मुखिया एक निर्वाचित प्रतिनिधि होता है, वंशानुगत राजा नहीं।

**पंथनिरपेक्ष:** राज्य से धर्म को अलग करना सुनिश्चित करना।

## 3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1. स 2. स 3.द 4. अ**

## 3.11संदर्भ ग्रंथ


6. हमारा संविधान भारत का संविधान और संवैधानिक विधि- सुभाष कश्यप, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
7. भारत का संविधान एक परिचय- डॉ दी . दी बसु, लेक्सिसनेक्सिस, नागपुर
8. भारत की राजव्यवस्था- एम. लक्ष्मीकांत, मैकग्राहिल पब्लिकेशन

## 3.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामाग्री

1. The Constitution of India A Politico-Legal Study, J.C.Johari- Sterling Publisher, New Delhi
2. Indian Government and Politics- Dr. B.L.Fadia, Sahitya Bhawan

## 3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान के विकास की ऐतिहासिक सन्दर्भ और विकास की विवेचना कीजिये।
2. भारतीय संविधान की प्रस्तवना के मूल तत्वों की विस्तृत विवेचना कीजिये।
3. प्रस्तावना की गतिशील प्रकृति का आकलन करें। पिछले कुछ वर्षों में इसने भारतीय समाज की बदलती जरूरतों और आकांक्षाओं को कैसे अपनाया है?

# इकाई 4 संविधान की विशेषताएं और मूल्य

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 पृष्ठभूमि

4.3 भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक उपयोगी सामग्री

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.0 प्रस्तावना

कैबिनेट मिशन योजना के तहत 26 नवंबर 1946 को संविधान सभा द्वारा तैयार और अपनाए गए भारतीय संविधान में कई अनूठी विशेषताएं हैं जो इसे अलग करती हैं। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने मसौदा समिति के प्रमुख के रूप में कार्य किया। भारतीय संविधान में कुछ तत्व अन्य देशों से प्रेरित हैं, उन्हें भारतीय राजनीति और सरकार के अनुकूल अनुकूलित किया गया है। भारत का संविधान विभिन्न विचारधाराओं का प्रतीक है जो इसके सार और उद्देश्य को आकार देते हैं।

पंथनिरपेक्षता भारतीय संविधान की पहचान है, जो सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करने के सिद्धांत पर जोर देती है, जबकि पश्चिम से लिया गया लोकतंत्र देश के शासन की रीढ़ है। एक अन्य प्रमुख विचारधारा सर्वोदय है, जो स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाने के लिए विकेंद्रीकरण के साथ-साथ सभी के विकास और कल्याण की वकालत करती है।

भारतीय संविधान मानवतावाद को भी अपनाता है, जो भारतीय विचारधारा की एक अनूठी विशेषता है, जिसमें करुणा और सहानुभूति को महत्व दिया गया है। इसके अलावा, इसमें भारतीय लोकाचार के अनुरूप उदारवाद के तत्वों को शामिल किया गया है, जो एक न्यायपूर्ण समाज के ढांचे के भीतर व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है। संविधान आर्थिक नीतियों के प्रति अपने दृष्टिकोण में समाजवादी सिद्धांतों को कायम रखता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा, जो सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों को सह-अस्तित्व की अनुमति देती है, भारतीय विचारधारा की एक प्रमुख विशेषता है, जो देश की आर्थिक संरचना को प्रभावित करती है।

इस इकाई के माध्यम से हम भारतीय संविधान की विशेषताओं और मूल्यों को विस्तृत रूप में जानेंगे।

## 4.1 उद्देश्य:

**1.** संविधान की पृष्ठभूमि का विश्लेषण कर पायेंगें।

**2.** संविधान की मुख्य विशेषताओं को जान पायेंगें।

## 4.2 पृष्ठभूमि

26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा द्वारा औपचारिक रूप से अपनाया गया भारत का संविधान, इसके निर्माताओं की सामूहिक दृष्टि का एक उल्लेखनीय प्रमाण है। विभिन्न वैश्विक संविधानों से प्रेरणा लेते हुए, उन्होंने कुशलतापूर्वक इसके प्रावधानों को भारतीय समाज की विशिष्ट आवश्यकताओं और

स्थितियों के अनुरूप तैयार किया। हालाँकि, समय के साथ, मूल संरचना में कई संशोधन हुए हैं, जो राष्ट्र की उभरती गतिशीलता को दर्शाते हैं।

अपनी लंबाई और संपूर्णता से प्रतिष्ठित, भारतीय संविधान की विशाल प्रकृति का श्रेय कई कारकों को दिया जाता है। इनमें से प्रमुख है देश का विशाल विस्तार, साथ ही इसकी जटिल सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक पेचीदगियाँ। इन जटिलताओं के लिए एक व्यापक ढांचे की आवश्यकता थी जो भारत के सामने आने वाली बहुमुखी चुनौतियों को समायोजित और संबोधित कर सके।

भारतीय राज्य और उसके राजनीतिक परिदृश्य के सार को सही मायने में समझने के लिए, संविधान को परिभाषित करने वाले मूल तत्वों में गहराई से जाना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रयास में उन प्रमुख विशेषताओं को पहचानना और उनकी सराहना करना शामिल है जो इसे अलग करती हैं। इस चर्चा के दायरे में, हम भारतीय संविधान को परिभाषित करने वाली प्रमुख विशेषताओं का एक संक्षिप्त अवलोकन प्रदान करने का प्रयास करेंगे।

संविधान के निर्माताओं ने विभिन्न वैश्विक संविधानों से सबसे प्रभावी पहलुओं को चुनते हुए, इसके प्रावधानों को सावधानीपूर्वक तैयार किया। इन विदेशी प्रभावों को किसी भी अंतर्निहित कमियों को कम करने और, अधिक महत्वपूर्ण बात, भारत के विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने के साथ संरेखित करने के लिए सोच-समझकर अनुकूलित किया गया था। अंतर्राष्ट्रीय ज्ञान और स्वदेशी अंतर्दृष्टि के इस सामंजस्यपूर्ण मिश्रण ने एक मजबूत संवैधानिक ढांचे को जन्म दिया है जो देश के अद्वितीय संदर्भ के साथ प्रतिध्वनित होता है।

यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि भारतीय संविधान एक स्थिर इकाई नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में, क्रमिक संशोधनों ने देश की उभरती प्राथमिकताओं के अनुरूप इसकी रूपरेखा तैयार की है। यह अनुकूलनशीलता संविधान की जीवंत प्रकृति को उजागर करती है, जो बदलते समय के सामने इसके लचीलेपन के प्रमाण के रूप में कार्य करती है।

## 4.3 भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं:

किसी राज्य के नागरिकों के व्यवहार को नियमित करने वाले नियमों के समूह को संविधान कहते हैं। संविधान जहाँ कानून के शासन को स्थापित करता है वहीँ राजनीतिक स्थिरता को भी बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय संविधान की एक खूबी यह भी है कि यह विकसित और अधिनियमित दोनों ही श्रेणियों में शामिल है । यह विकसित संविधान की श्रेणी में आता है क्यूंकि ब्रिटिश काल के दौरान विभिन्न अधिनियम बने जो कि एक विकास यात्रा के परिणाम रहे वहीँ दूसरी तरफ संविधान सभा के द्वारा एक निश्चित कार्यकाल में विभिन्न अधिनियम अधिनियमित हुए। कैबिनेट

मिशन योजना के तहत संविधान सभा का गठन हुआ । दो वर्ष ग्यारह माह अठारह दिन में संविधान सभा द्वारा संविधान को तैयार किया गया. भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं विस्तृत रूप से निम्नलिखित है:

1. **विश्व का सबसे लम्बा संविधान:**

   भारत का संविधान दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान होने का गौरव रखता है। इसमें एक प्रस्तावना शामिल है, जो 22 भागों में व्यवस्थित 395 लेखों के साथ-साथ दस्तावेज़ के स्वर और उद्देश्य को निर्धारित करती है। इसके अतिरिक्त, इसमें 12 अनुसूचियां और 5 परिशिष्ट शामिल हैं, जो इसे एक व्यापक और विस्तृत ढांचा बनाता है जो देश की राजनीतिक प्रणाली के सार को आकार देता है।

   मौलिक कानूनों के भंडार के रूप में, भारतीय संविधान राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति का खाका तैयार करता है और सरकार के विभिन्न अंगों की संरचना और कार्यप्रणाली की रूपरेखा तैयार करता है। यह मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में कार्य करता है जो देश के शासन को निर्देशित करता है और इसके लोकतांत्रिक संस्थानों के निर्बाध कामकाज को सुनिश्चित करता है।

   भारतीय संविधान की व्यापकता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है:

   **विविध अनुभवों का समावेश:** यह दुनिया भर के अग्रणी संविधानों से प्रेरणा लेता है, उनके अनुभवों और सर्वोत्तम प्रथाओं से लाभ उठाता है।

   **संघ और राज्य संविधान:** यह केंद्र सरकार और अलग-अलग राज्यों दोनों के लिए अलग-अलग प्रावधान निर्धारित करता है।

   **विस्तृत केंद्र-राज्य संबंध:** इसमें केंद्र सरकार और राज्यों के बीच संबंधों से संबंधित व्यापक प्रावधान शामिल हैं।

   **न्यायोचित और गैर-न्यायसंगत अधिकार:** यह दोनों न्यायोचित अधिकारों को, जिन्हें कानूनी रूप से लागू किया जा सकता है, और गैर-न्यायसंगत अधिकारों को, जो मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में काम करते हैं, स्थापित करता है।

   **क्षेत्रीय मुद्दों को संबोधित करना:** इसमें विभिन्न क्षेत्रीय चुनौतियों और चिंताओं को दूर करने के लिए विशेष प्रावधान शामिल हैं।

2. **कठोरता और लचीलेपन का अनोखा समन्वय:**

   हमारे दैनिक जीवन में, हम पाते हैं कि किसी लिखित दस्तावेज़ में बदलाव लाना आसान नहीं है। जहां तक संविधान का संबंध है, आम तौर पर लिखित संविधान कठोर होते हैं। इनमें बार-बार बदलाव लाना आसान नहीं है. संविधान संवैधानिक संशोधनों के लिए एक विशेष

प्रक्रिया निर्धारित करता है। ब्रिटिश संविधान की तरह अलिखित संविधान में भी सामान्य कानून-निर्माण प्रक्रियाओं के माध्यम से संशोधन किये जाते हैं। ब्रिटिश संविधान एक लचीला संविधान है। अमेरिकी संविधान की तरह लिखित संविधान में भी संशोधन करना बहुत कठिन होता है। इसलिए, अमेरिकी संविधान एक कठोर संविधान है। हालाँकि, भारतीय संविधान न तो ब्रिटिश संविधान जितना लचीला है और न ही अमेरिकी संविधान जितना कठोर है। यह निरंतरता और परिवर्तन के मूल्य को दर्शाता है। भारत के संविधान में संशोधन के तीन तरीके हैं। इसके कुछ प्रावधानों को संसद में साधारण बहुमत से और कुछ को विशेष बहुमत से संशोधित किया जा सकता है, जबकि कुछ संशोधनों के लिए संसद में विशेष बहुमत और राज्यों की मंजूरी की भी आवश्यकता होती है।

3. **विभिन्न स्रोतों से विहित:**

भारतीय संविधान निस्संदेह विभिन्न स्रोतों से प्रेरणा लेता है, और जबकि इसकी कुछ विशेषताएं अन्य देशों के संविधानों से प्रभावित हैं, यह भारत की सरकार और राजनीति के साथ संरेखित तत्वों का सावधानीपूर्वक चयन करके अपनी विशिष्टता बनाए रखता है। विशेष रूप से, प्रावधानों की एक महत्वपूर्ण संख्या, भारत सरकार अधिनियम 1935 से ली गई है। डॉ. अम्बेडकर ने इस सन्दर्भ में गर्व से घोषणा की थी कि, "भारत के संविधान का निर्माण विश्व के विभिन्न संविधानों को छानने के बाद किया गया है। संविधान का दार्शनिक भाग (मौलिक अधिकार और राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत) क्रमशः अमेरिका और आयरलैंड से लिए गए हैं। भारतीय संविधान के राजनीतिक भाग (कैबिनेट सरकार का सिद्धांत और कार्यपालिका और विधायिका के सम्बन्ध) का अधिकांश हिस्सा ब्रिटेन के संविधान से लिया गया है।

भारत के संविधान पर सबसे बड़ा प्रभाव भारत सरकार अधिनियम, 1935 का रहा। इन प्रावधानों में प्रशासनिक विवरण, आपातकालीन प्रावधान, लोक सेवा आयोगों की स्थापना, न्यायपालिका की संरचना, कार्यालय शामिल हैं।

4. **मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य:**

यह भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण पहलू हैं, जिन्हें अक्सर संविधान की "अंतरात्मा" के रूप में जाना जाता है। ये अधिकार नागरिकों के लिए एक सुरक्षा कवच के रूप में काम करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि राज्य मनमाने ढंग से और पूरी तरह से सत्ता का उपयोग नहीं कर सकता है। वे व्यक्तियों को कुछ आवश्यक स्वतंत्रता और स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं, न केवल उन्हें राज्य की शक्ति के संभावित दुरुपयोग से बचाते हैं बल्कि साथी नागरिकों द्वारा किसी भी उल्लंघन से भी बचाते हैं। इसके अलावा, संविधान अल्पसंख्यकों के अधिकारों

की रक्षा के लिए अपनी सुरक्षात्मक पहुंच का विस्तार करता है, यह सुनिश्चित करता है कि बहुसंख्यक शासन के बावजूद भी उनके हितों की रक्षा की जाए।

**संविधान के तीसरे भाग में छः मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है.** ये अधिकार हैं:

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)
2. स्वतंत्रता का अधिकार ( अनुच्छेद 19-22)
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)
5. सांस्कृतिक व शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 29-30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

हालांकि संविधान इन मौलिक अधिकारों को सुनिश्चित करता है, इसमें मौलिक कर्तव्यों से संबंधित प्रावधान भी शामिल हैं। मौलिक कर्तव्य कानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं, लेकिन ये बहुत मूल्यवान हैं क्योंकि ये संविधान में अंतर्निहित मूल सिद्धांतों को प्रतिबिंबित करते हैं। वे नागरिकों को देशभक्ति, राष्ट्र की विरासत के प्रति सम्मान और समाज के कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता जैसे मूल्यों को बनाए रखने के लिए प्रेरित करते हैं।

मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है। इन्हें स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश के आधार पर 1976 के 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से आंतरिक आपातकाल (1975-77) के दौरान शामिल किया गया था। 2002 के 86 वें संविधान संशोधन ने एक और मौलिक कर्तव्य को जोड़ा।

**5. राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत:**

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों को भारतीय संविधान में एक अभिनव जोड़ के रूप में माना। संविधान के भाग IV में उल्लिखित इन सिद्धांतों को सभी नागरिकों के लिए आर्थिक और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए शामिल किया गया था। उन्हें शामिल करने के पीछे प्राथमिक उद्देश्य भारत को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करना था, जो अपने लोगों की भलाई और प्रगति के लिए प्रतिबद्ध हो। ये निदेशक सिद्धांत संविधान की एक विशिष्ट पहचान के रूप में खड़े हैं, जो राष्ट्र के व्यापक कल्याण और समावेशी विकास के प्रति इसके समर्पण को दर्शाते हैं।

**मिनर्वा मिल्स मामले** ( 1980) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि " भारतीय संविधान की नींव मौलिक अधिकारों और नीति-निदेशक सिद्धांतों के संतुलन पर रखी गई है।

**6. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार:**

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, भारतीय संविधान की एक मूलभूत विशेषता है जो , लैंगिक समानता पर भी जोर देती है। यह सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि पुरुषों और महिलाओं के पास समान मतदान अधिकार हों, जो समावेशिता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। संविधान कहता है कि नागरिक, लिंग की परवाह किए बिना, 18 वर्ष की आयु तक पहुंचने पर मतदान करने का विशेषाधिकार रखते हैं। इसके अलावा, देश के सभी पंजीकृत मतदाताओं को चुनावी प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर प्राप्त है।

7. **अर्ध संघीय स्वरुप:**

भारतीय राज्य की प्रकृति को अर्ध-संघीय के रूप में वर्णित किया जा सकता है क्योंकि यह संघवाद और एकात्मक दोनों की विशेषताओं को प्रदर्शित करता है। जबकि भारतीय संविधान शुरू में एक संघीय ढांचा स्थापित करता है, जिसमें केंद्र सरकार (संघ) और राज्य सरकारों के बीच शक्तियां वितरित की जाती हैं, आपातकाल के समय में यह एकात्मक चरित्र भी धारण कर सकता है। भारतीय संविधान के संघीय पहलुओं में सरकार के दो समूहों की उपस्थिति शामिल है - एक केंद्रीय स्तर पर और दूसरा राज्य स्तर पर। संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है, प्रत्येक के अपने अधिकार क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त, एक स्वतंत्र न्यायपालिका का अस्तित्व शक्तियों के विभाजन की व्याख्या और सुरक्षा करके संघीय चरित्र को मजबूत करता है।

दूसरी ओर भारतीय राज्य में अनेक एकात्मक विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। शब्द "राज्यों का संघ" एक एकात्मक धारणा का सुझाव देता है, जो देश की एकता और एकल इकाई स्थिति पर प्रकाश डालता है। एकल नागरिकता की अवधारणा, जहां प्रत्येक भारतीय नागरिक पूरे देश का नागरिक है, न कि केवल एक विशिष्ट राज्य का, इस एकात्मक पहलू पर और जोर देता है। भारतीय संविधान का एकात्मक चरित्र इसकी एकल एकीकृत न्यायिक और प्रशासनिक प्रणाली में भी स्पष्ट है, जो पूरे देश में एक समान कानूनी संरचना सुनिश्चित करता है। चुनाव, ऑडिट और शासन के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं की देखरेख करने वाली एक केंद्रीय मशीनरी है।

8. **सरकार का संसदीय रूप:**

भारतीय संविधान ने अमेरिका की अध्यक्षीय प्रणाली की बजाय ब्रिटेन की संसदात्मक शासन शासन व्यवस्था को अपनाया। संसदीय व्यवस्था कार्यपालिका और विधायिका के मध्य सहयोग और समन्वय के सिद्धांत पर आधारित है जबकि अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था दोनों के मध्य शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित है. संसदीय प्रणाली को सरकार के "वेस्टमिंस्टर" रूप, उत्तरदायी सरकार और मंत्रिमंडलीय सरकार के नाम से भी जाना जाता

है. संविधान केवल केंद्र में ही नहीं बल्कि राज्यों में भी संसदीय प्रणाली की स्थापना करता है. भारत में संसदीय प्रणाली की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- वास्तविक व नाममात्र की कार्यपालिका
- बहुमत वाले दल की सत्ता
- विधायिका में मंत्रियों की सदस्यता
- विधायिका के समक्ष कार्यपालिका की संयुक्त जवाबदेही
- प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का नेतृत्व
- निचले सदन का विघटन (लोकसभा, विधानसभा)

किसी भी संसदीय व्यवस्था में, चाहे वह भारत की हो अथवा ब्रिटेन की, प्रधानमंत्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है. जैसा कि राजनीति के जानकार इसे "प्रधानमंत्रीय सरकार" का नाम देते हैं.

9. **संप्रभुता लोगों में निवास करती है:**

   भारतीय संविधान में लोकप्रिय संप्रभुता का मूल सिद्धांत केंद्र में है। यह मूल सिद्धांत संविधान के परिचयात्मक खंड में समाहित है, जहां यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संविधान न केवल भारत के लोगों द्वारा अपनाया और अधिनियमित किया गया था, बल्कि गणतंत्र के संरक्षक के रूप में उनकी भूमिका पर भी जोर दिया गया है।लोकप्रिय संप्रभुता की यह अवधारणा इस विचार को रेखांकित करती है कि अंतिम अधिकार और शक्ति स्वयं नागरिकों के हाथों में रहती है। यह सरकार और उसके लोगों के बीच गहरा संबंध स्थापित करता है, यह दावा करते हुए कि देश का शासन उसके नागरिकों की सामूहिक इच्छा और सहमति से निकलता है। भारतीय संविधान, लोगों को अपने राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले ढाँचे का निर्माता घोषित करके, इसके भाग्य को आकार देने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानता है। यह स्वीकार करता है कि संविधान एक जीवित दस्तावेज है, जो राष्ट्र का निर्माण करने वाली आकांक्षाओं, मूल्यों और विविध पहचानों को प्रतिबिंबित करता है। लोकप्रिय संप्रभुता पर यह जोर यह सुनिश्चित करता है कि लोगों की आवाज़ लोकतांत्रिक प्रक्रिया के केंद्र में बनी रहे। यह एक निरंतर अनुस्मारक के रूप में कार्य करता है कि संविधान न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के प्रति लोगों **की** प्रतिबद्धता का प्रतिबिंब है - सिद्धांत जो राष्ट्र को प्रगति और सद्भाव की यात्रा पर मार्गदर्शन करते हैं।

10. **स्वतंत्र न्यायपालिका:**

संघीय संविधान वाले देशों में विशिष्ट, भारत एक अद्वितीय और एकीकृत न्यायिक प्रणाली का दावा करता है। डॉ. बी.आर. संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले ने संविधान सभा में इस विशेषता को उजागर किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि हालांकि भारत का संघ दोहरी राजनीति का प्रतीक है, लेकिन यह दोहरी न्यायपालिका को प्रश्रय न देकर अलग खड़ा है। व्यावहारिक रूप से, यह एक सामंजस्यपूर्ण और एकीकृत न्यायिक ढांचे का अनुवाद करता है जो उच्च न्यायालयों से लेकर न्याय के शिखर, सर्वोच्च न्यायालय तक फैला हुआ है। ये स्तर सामूहिक रूप से एक विलक्षण, निर्बाध इकाई का गठन करते हैं, जो अधिकार क्षेत्र का प्रदर्शन करते हैं और संवैधानिक, नागरिक या आपराधिक कानून के तहत आने वाले मामलों के व्यापक स्पेक्ट्रम पर फैसले देते हैं।

इस एकीकृत दृष्टिकोण के पीछे का तर्क कानूनी उपचारों के दायरे में असमानताओं और विसंगतियों को खत्म करने की आकांक्षा पर आधारित है। एक एकल न्यायिक प्रणाली को कायम रखते हुए, भारत का लक्ष्य उन भिन्नताओं को पार करना है जो संभावित रूप से अलग-अलग संस्थाओं के अस्तित्व से उत्पन्न हो सकती हैं। यह सामंजस्यपूर्ण संरचना संविधान में निहित सिद्धांतों को कायम रखते हुए, कानूनी उपायों के अनुप्रयोग में स्थिरता और समानता सुनिश्चित करने के लिए डिज़ाइन की गई है। संक्षेप में, भारत की एकीकृत न्यायिक प्रणाली न्याय की एक समान और निष्पक्ष व्यवस्था के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है। उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय को एक एकल ढांचे में एकीकृत करके, भारत कानूनी कार्यवाही और निर्णयों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है, जिससे एक सामंजस्यपूर्ण और न्यायसंगत कानूनी वातावरण को बढ़ावा मिलता है।

11. **आपातकालीन उपबंध:**

संविधान के कुछ उपबंधों के सम्बन्ध में संविधान सभा में तीखी बहस हुई थी उसमें से एक आपातकालीन प्रावधान है। संविधान सभा में इन प्रावधानों पर विचार-विमर्श के दौरान बहसें देखने को मिलीं। संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने उन्हें शामिल किए जाने का विरोध किया और तर्क दिया कि वे संविधान में निहित अन्य लोकतांत्रिक सिद्धांतों के साथ असंगत लगते हैं। फिर भी, अधिकांश सदस्यों ने उनके समावेशन का समर्थन किया, उन्हें संभावित विघटनकारी ताकतों के खिलाफ एक आवश्यक सुरक्षा के रूप में देखा जो नवोदित संघ को कमजोर कर सकते थे।

संविधान का भाग-XVIII राष्ट्रपति में निहित आपातकालीन शक्तियों का वर्णन करता है। इन प्रावधानों का उद्देश्य भारत संघ की संप्रभुता, स्वतंत्रता और अखंडता के लिए एक सुरक्षा कवच के रूप में काम करना है। इस प्रयोजन के लिए, राष्ट्रपति को तीन अलग-अलग प्रकार की आपात स्थितियों की घोषणा करने का अधिकार दिया गया है:

1. **राष्ट्रीय आपातकाल**: युद्ध, आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से पैदा हुई राष्ट्रीय अशांति की अवस्था (अनुच्छेद-352)।
2. **राज्य में आपातकाल (राष्ट्रपति शासन ):** राज्यों में संवैधानिक तंत्र की असफलता (अनुच्छेद 356) या केंद्र के निदेशों का अनुपालन करने में असफलता (अनुच्छेद-365)।
3. **वित्तीय आपातकाल :** भारत की वित्तीय स्थिरता या प्रत्यय संकट में हो (अनुच्छेद 360)।

12. **केंद्र-राज्य सम्बन्ध :**

भारत एक संघीय राज्य के रूप में कार्य करता है, दिलचस्प बात यह है कि 'संघीय' शब्द का इसके संविधान में उल्लेख नहीं है। इसके बजाय, संविधान कई प्रमुख बिंदुओं को व्यक्त करने के लिए 'राज्यों के संघ' वाक्यांश का उपयोग करता है: भारतीय संघ का गठन संप्रभु इकाइयों के एकजुट होने के समझौते के माध्यम से नहीं किया गया था।देश को अलग-अलग राज्यों में विभाजित करना मुख्य रूप से प्रशासनिक दक्षता के लिए था, जिसमें राज्य की सीमाओं को बदलने का लचीलापन भी था।चूंकि संघ किसी औपचारिक समझौते से नहीं उभरा है, इसलिए किसी भी राज्य को इससे अलग होने का अधिकार नहीं है।

संविधान स्पष्ट रूप से संघ और राज्यों दोनों के लिए प्राधिकार के अलग-अलग क्षेत्र निर्दिष्ट करता है। इसे तीन सूचियों में उल्लिखित शक्तियों के विभाजन के माध्यम से प्राप्त किया जाता है: संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। ये सूचियाँ केंद्र और राज्य सरकारों की शक्तियों की गणना करती हैं, यह सुनिश्चित करती हैं कि उनके संचालन के क्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित करते हैं। इसके अलावा, कोई भी अवशिष्ट शक्तियाँ जो इन सूचियों में स्पष्ट रूप से विस्तृत नहीं हैं, केंद्र सरकार में निहित हैं। केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों, कार्यों और प्रभाव क्षेत्रों का यह रणनीतिक वितरण अनिवार्य रूप से उनके सहयोग और बातचीत के विभिन्न क्षेत्रों में उनके संबंधों के बारे में सवाल उठाता है। यह जटिल ढांचा भारत संघ के भीतर संघीय ढांचे और व्यक्तिगत राज्यों की स्वायत्तता के बीच एक सामंजस्यपूर्ण संतुलन स्थापित करना चाहता है।

**13. त्रिस्तरीय सरकार:**

भारत में शासन की संरचना में त्रि-स्तरीय प्रणाली शामिल है, जैसा कि 73वें और 74वें संशोधन अधिनियमों द्वारा निर्धारित किया गया है। ये संशोधन शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लिए स्थानीय निकायों की स्थापना करते हैं, जो सरकार के तीसरे स्तर का गठन करते हैं। ये स्थानीय निकाय देश भर के गांवों में स्वशासन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते

हैं। संशोधन जमीनी स्तर पर समुदायों को सशक्त बनाने, उन्हें अपने मामलों की जिम्मेदारी लेने और भारत के विविध क्षेत्रों के समग्र विकास में योगदान करने में सक्षम बनाने के लिए एक ठोस प्रयास को दर्शाते हैं।

**अभ्यास प्रश्न:**

**1.** भारतीय संविधान के किस भाग में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत शामिल हैं?

**(अ) भाग I (ब) भाग II (स) भाग III (द) भाग IV**

**2.** भारत के राष्ट्रपति संविधान के किस अनुच्छेद के आधार पर राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकते हैं?

**(अ) अनुच्छेद 352 (ब) अनुच्छेद 44 (स) अनुच्छेद 360 (द) अनुच्छेद 356**

**3.** कल्याणकारी राज्य" की अवधारणा भारतीय संविधान में निम्नलिखित के माध्यम से सन्निहित है:

**(अ) मौलिक अधिकार (ब) राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत**

**(स) कार्यकारी शक्तियाँ (द) प्रस्तावना**

**4.** भारतीय संविधान में "राज्यों का संघ" शब्द का प्रयोग यह दर्शाने के लिए किया जाता है:

**(अ) राज्यों का एक स्वैच्छिक संघ (ब) राज्यों का एक संघ**

**(स) एक संघीय ढांचा (द) एकात्मक सरकार**

## 4.4 सारांश

भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं दूरदर्शी सिद्धांतों और व्यावहारिकता का प्रतिनिधित्व करती हैं जो सामूहिक रूप से देश के लोकतांत्रिक ढांचे को आकार देती हैं। संविधान की प्रस्तावना उन मूल मूल्यों को समाहित करती है जो भारत के मार्ग का मार्गदर्शन करते हैं, जबकि इसकी संघीय संरचना एक एकीकृत संपूर्णता के भीतर विविध पहचानों का सामंजस्य स्थापित करती है। मौलिक अधिकार

और निदेशक सिद्धांत सामाजिक समानता के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भी वकालत करते हैं, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक कल्याण दोनों के प्रति राष्ट्र की प्रतिबद्धता का प्रतीक है।

राज्य के अंग- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका - शक्ति का एक संतुलन सुनिश्चित करती है, जबकि विशेष प्रावधान ऐतिहासिक असंतुलन को संबोधित करते हैं और हाशिए पर रहने वाले वर्गों को सशक्त बनाते हैं। संविधान की अनुकूलनशीलता आपातकालीन शक्तियों के प्रावधानों और संशोधनों के तंत्र में स्पष्ट है, जो संकट के समय में प्रणाली की लचीलापन और बदलती जरूरतों के जवाब में विकास को सुनिश्चित करती है।

इन सबसे ऊपर, राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत एक विशिष्ट और प्रगतिशील विशेषता के रूप में उभरते हैं, जो एक कल्याणकारी राज्य के निर्माण के लिए भारत के समर्पण को रेखांकित करता है जो अपने नागरिकों के सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की रक्षा करता है। ये विशेषताएं सामूहिक रूप से भारतीय संविधान को देश की आकांक्षाओं के जीवंत प्रमाण के रूप में चित्रित करती हैं, जो विविधता में एकता की भावना और न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की अटूट खोज को दर्शाती है।

## 4.5 शब्दावली

**शक्तियों का पृथक्करण:** सरकारी कार्यों का विधायी, कार्यकारी और न्यायिक शाखाओं में विभाजन।

**संसदीय लोकतंत्र:** वह प्रणाली जहां कार्यकारी शाखा विधायिका के प्रति जवाबदेह होती है।

**आरक्षण:** वंचित वर्गों को अवसर प्रदान करने हेतु सकारात्मक कार्रवाई।

## 4.6 अभ्याश प्रश्नों के उत्तर

**1. द** **2. अ** **3. ब** **4. अ**

## 4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.हमारा संविधान भारत का संविधान और संवैधानिक विधि- सुभाष कश्यप, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

2.भारत का संविधान एक परिचय- डॉ दी . दी बसु, लेक्सिसनेक्सिस, नागपुर

3.भारत की राजव्यवस्था- एम. लक्ष्मीकांत, मैकग्राहिल पब्लिकेशन

## 4.7 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.The Constitution of India A Politico-Legal Study, J.C.Johari- Sterling Publisher, New Delhi

2.Indian Government and Politics- Dr. B.L.Fadia, Sahitya Bhawan

## 4.8 निबंधात्मक प्रश्न

**1.** भारतीय संविधान में परिकल्पित "संघवाद" की अवधारणा का परीक्षण करें।

2. भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की भूमिका और महत्व का विश्लेषण करें। ये अधिकार किस प्रकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देते हैं?

3. राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों की व्याख्या करें।

# इकाई 5- भारत में संघात्मक व्यवस्था

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 संघवाद की अवधारण

5.3 भारतीय संघवाद की प्रकृति

5.4 भारतीय संघ की विशेषताएं

5.5 भारतीय संघवाद और राजनीति

5.6 केंद्र-राज्य सम्बन्ध

5.7 शब्दावली

5.8 सारांश

5.9 अभ्यास प्रश्न उत्तर

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 5.0 प्रस्तावना

विश्व की समस्त व्यवस्थाएं अब बदल रही है। शासन व्यवस्था में सुधार किए जा रहे है। शासन व्यवस्थाओं में विभिन्न स्तरों का समावेश किया जा रहा है। पहले शासन का केंद्रीकरण हुआ करता था लेकिन अब शासन के विभिन्न स्तर देखने को मिल रहे है। जैसे- केंद्र सरकार , राज्य सरकार और स्थानीय सरकार। कुछ देश संघीय व्यवस्था को अपना रहे है तो कुछ एकात्मक व्यवस्था को अपना रहे है। शासन के सरंचना में परिवर्तन के साथ साथ अब शासन की प्रकृति में भी परिवर्तन हो रहा है। अब सत्ता को अधिक से अधिक पारदर्शी और सहभागी बनाया जा रहा है। केंद्रीय स्तर से शासन शक्ति अब क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तरों की तरफ बढ़ रही है। ब्रिटिश शासन के काल में भारत शासन अधिनियम 1935 के द्वारा भारत में संघात्मक व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयास किया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उसी आधार पर एवं भारतीय सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधता को देखते हुए संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया। भारतीय संघात्मक व्यवस्था की प्रकृति और स्वरुप अमेरिका की संघात्मक व्यवस्था से भिन्न है। एक तरफ जहाँ अमेरिका में संघ का निर्माण विभिन्न राज्यों से एकजुट होने का परिणाम है वही भारतीय संघ ने खुद संघीय सरंचना को अपनाया है अर्थात भारतीय संघ ने राज्यों का निर्माण किया है न की राज्यों ने मिलकर भारतीय संघ का निर्माण किया है ।यद्यपि भारतीय शासन व्यवस्था की सरचना संघीय है फिर भी भारतीय संविधान के किसी भी अनुच्छेद में या फेडरल शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके लिए यूनियन ऑफ स्टेट अर्थात राज्यों का संघ शब्द का प्रयोग किया गया है।

## 5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

1.संघवाद की अवधारणा को समझेंगे।

2.भारतीय संघवाद की प्रकृति को जान पाएंगे।

3.भारतीय संघ की विशेषताओं को जान पाएंगे।

4.भारतीय संघ के राजनीतिक परिपेक्ष्य को समझ पाएंगे।

5.केंद्र-राज्य के मध्य सम्बन्ध को समझ पाएंगे।

## 5.2 संघवाद की अवधारणा

भारत में संघवाद को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम संघवाद की अवधारणा को विस्तृत रूप से समझें। संघवाद एकात्मक एवं परिसंघात्मक व्यवस्था से अलग है। एकात्मक व्यवस्था में किसी राज्य की राजनीतिक शक्ति का केन्द्रन एक स्थान पर अर्थात केंद्र सरकार के पास होता है वही परिसंघात्मक व्यवस्था में राज्य की राजनीतिक शक्ति का वितरण अनेक स्थान पर होता है। संघात्मक व्यवस्था में राज्य की राजनीतिक शक्ति का वितरण केंद्र और राज्य की सरकारों के मध्य सामान रूप से होता है। यहां से संघवाद की अवधारणा को विस्तृत रूप से समझने के लिए एकात्मक एवं परिसंघीय व्यवस्था की अवधारणा को समझना आवश्यक है। एकात्मक शासन व्यवस्था में राज्य की संपूर्ण राजनीतिक शक्ति केंद्रीय सरकार में निहित होती है अर्थात नीति निर्माण की अंतिम शक्ति केंद्र सरकार में निहित होती है। इसमें राष्ट्रीय एकता को ज्यादा महत्व दिया जाता है। इस व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति का विकेंद्रीकरण नहीं किया जा सकता। नीतियों कानूनों और नियमों के कुशल संचालन के लिए प्रशासनिक विकेंद्रीकरण किया जा सकता है। लेकिन इन सरकारों के गठन का आधार सिर्फ और सिर्फ विकेंद्रीकरण ही होता है ना की राजनीति विकेंद्रीकरण। परिसंघीय शासन व्यवस्था इस व्यवस्था में कुछ राज्य सामान्य हित जैसे सामूहिक सुरक्षा,आर्थिक विकास एवं अन्य कारणों की वजह से एकजुट होकर एक परिसंघ का निर्माण करते हैं इस व्यवस्था में सांस्कृतिक धार्मिक एवं भौगोलिक विविधता जैसे क्षेत्रीय मुद्दों को अधिक महत्व दिया जाता है।इस शासन व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति के केंद्र राज्य होते हैं ना कि केंद्र। केंद्र के पास केवल राज्यों के समान उद्देश्यों की पूर्ति से संबंधित कुछ विषय दिए जाते हैं जैसे सुरक्षा,संचार,विदेश नीति आदि। परिसंघीय सरकार का अस्तित्व,राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है और राज्य चाहे तो मिलकर केंद्र का विघटन कभी भी कर सकते हैं। संघात्मक शासन व्यवस्था में राष्ट्रीय एकता के साथ क्षेत्रीय विविधता को भी महत्व दिया जाता है। इस व्यवस्था में राज्य अथवा देश की राजनीतिक शक्तियों का विभाजन केंद्र और राज्य सरकार के रूप में दो स्तरों में किया जाता है। राजनीतिक शक्तियों का उल्लेख संविधान में स्पष्ट रूप से किया जाता है। इस अवस्था में केंद्र अथवा संघ एवं राज्य अपने विषय का प्रयोग स्वतंत्र रूप से करते हैं। दोनों में कोई भी सरकार एक दूसरे के अधीन कार्य नहीं करती और ना ही एक दूसरे के शक्तियों का अतिक्रमण करती है।[2]

**के. सी . व्हियर अनुसार**- संघात्मकता इस बात में निहित नहीं है कि अवशिष्ट शक्तियां किसके पास है बस इस तथ्य में निहित है कि केंद्रीय और राज्य सरकारों में कोई भी किसी के अधीन नहीं है। व्हियर ने यह लिखा है कि संघात्मकता के सिद्धांत से मेरा तात्पर्य शक्तियों के विभाजन की विधि से है जिससे संघीय सरकार और प्रदेशिक सरकारों में से हर एक अपने क्षेत्र विशेष में स्वतंत्र हो समकक्ष रहे।[2]

**कोरी एवं अब्राहम के अनुसार**- संघवाद सरकार का ऐसा दोहरापन है जो विविधता के साथ एकता का समन्वय करने की दृष्टि से शक्तियों के प्रादेशिक एवं प्रकार्यात्मक विभाजन पर आधारित होता है ।[2]

उपरोक्त कथन के अनुसार हम यह भी कह सकते हैं के.सी.व्हियर के लिए संघात्मक व्यवस्था वह व्यवस्था है जिसमें केंद्र और राज्य सरकार स्वतंत्र एवं समकक्ष हो तथा उनके मध्य शक्तियों का स्पष्ट विभाजन हो। संघात्मक व्यवस्था के निर्माण के पीछे दो सिद्धांत देखने को मिलते हैं- 1. जब स्वैच्छिक रूप से स्वतंत्र राज्य मिलकर किसी एक संघ का निर्माण करते हैं जैसे अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया।

2.जब कोई एकात्मक राज्य, खुद संघीय राज्य के रूप में अर्थात संघात्मक व्यवस्था के रूप में स्थानांतरित हो जाता है अर्थात जब एक एकात्मक राज्य, संघात्मक राज्य के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

## 5.3 भारतीय संघवाद की प्रकृति

भारतीय संविधान में संघ के सभी लक्षण देखने को मिलते हैं जो कि निम्नलिखित हैं

### 1 सर्वोच्च एवं लिखित संविधान

भारतीय संविधान सर्वोच्च एवं लिखित है। केंद्र और राज्य के शक्तियों का विभाजन इसमें स्पष्ट रूप से किया गया है। दोनों ही सरकारें अपने अपने अधिकार क्षेत्र में कार्य करती हैं और एक दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करती हैं।

### 2 स्वतंत्र न्यायपालिका

भारतीय संविधान में स्वतंत्र न्यायपालिका का उल्लेख है। न्यायालय किसी भी कानून की न्यायिक समीक्षा ,संविधान के अनुसार करता है एवं संविधान की व्याख्या का अधिकार भी सर्वोच्च न्यायालय के पास है। केंद्रों और राज्यों के मध्य क्षेत्राधिकार को लेकर होने वाले किसी भी विवाद का समाधान भी न्यायालय द्वारा किया जाता है।

### 3 शक्तियों का विभाजन

संघवाद व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि शक्तियों का स्पष्ट बंटवारा किया जाए। भारतीय संविधान की सातवीं सूची में देश की संपूर्ण शक्ति को तीन भागों में केंद्रीय सूची,राज्य सूची और समवर्ती सूची में बांटा गया है।ऐसे विषय जो देश के एकीकरण एवं एकता के लिए आवश्यक है अर्थात

राष्ट्रीय महत्व के हैं उनको संघ सूची में स्थान दिया गया है। क्षेत्रीय विविधता बनाए रखने के महत्व और क्षेत्र के महत्व के विषयों को राज्य सूची में स्थान दिया गया हैं। समवर्ती सूची में उल्लेखित विषयों पर केंद्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। लेकिन किसी विवाद की स्थिति में केंद्र के कानून को वरियता दी जाएगी। अवशिष्ट विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केंद्र को दिया गया है।

भारतीय संविधान में मौजूद इन लक्षणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भारत एक संघीय देश है लेकिन भारतीय संविधान में एकात्मक व्यवस्था के भी लक्ष्मण विद्यमान है जोकि निम्नलिखित है-

1. **शक्तिशाली केंद्र**

   भारतीय संविधान में केंद्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का बंटवारा एक समान नहीं है केंद्र के पास ज्यादा विषय हैं और हमें ये भी देखने को मिलता है कि महत्वपूर्ण विषय केंद्र के पास है। समवर्ती सूची के विषयों में अगर विवाद होता है तो केंद्र को वरियता दी जाती है।

2. **विनाशकारी राज्य**

   केंद्र के पास यह शक्ति होती है कि वह राज्य के क्षेत्रफल में बदलाव कर सकता है नाम परिवर्तित कर सकता है और उसे विभाजित कर सकता है, उसकी सीमा में परिवर्तन भी कर सकता है।

3. **आपातकालीन स्थिति**

   राष्ट्रीय आपातकाल में देश एकात्मक व्यवस्था के रूप में व्यवहार करने लगता है। राष्ट्रपति शासन के द्वारा केंद्र,राज्य की संपूर्ण विधायी और प्रशासनिक दायित्वों का वहन करता है।

4. **अखिल भारतीय सेवा**

   अखिल भारतीय सेवाओं के सेवकों की नियुक्ति केंद्र द्वारा की जाती है लेकिन इस सेवा के अधिकारी ना केवल केंद्र को अपनी सेवा देते हैं बल्कि राज्य को भी अपनी सेवा देते हैं। राज्य कैडर के माध्यम से यह अधिकारी लंबे समय तक राज्य में नियुक्त होते हैं इन अधिकारियों को उनके पद से पदच्युत करने का अधिकार राज्य के पास नहीं होता है।अतः ये एक एकात्मक राज्य के लक्षणों को प्रदर्शित करता है।

5. **राज्यपाल**

   राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत कार्य करता है।राज्यपाल राज्य में केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य करता है।

6. **वित्तीय स्थिति**

   भारतीय संविधान में अधिकतर वित्तीय संसाधन केंद्र को दिए गए हैं। वित्तीय आयोग भले ही केंद्र और राज्य के मध्य वित्तीय संसाधनों के बंटवारे की अनुशंसा करता हो पर उस अनुशंसा को मानना या न मानना केंद्र के हाथ में होता है।राज्य वित्तीय श्रोतों के लिए केंद्र पर ही निर्भर

होता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि केंद्र की वित्तीय स्थिति राज्य से कहीं ज्यादा अच्छी होती है।

"के एम मुंशी ने भारत को एक अर्ध संघ कहा है"

के.सी व्हियर के अनुसार- यह एक संघीय विशेषताओं के साथ एकात्मक राज्य है न कि एकात्मक विशेषताओं के साथ संघीय राज्य।

डब्ल्यू. एच. मोरिस के अनुसार - भारतीय संघवाद एक तरह का सहकारी संघवाद है जहां केंद्र और राज्यों के बीच में मोल भाव की प्रक्रिया चलती है लेकिन अंतिम संसाधन में दोनों पक्ष सहयोग के लिए सहमत होते हैं।

उपरोक्त विवरण में हमने भारत के संघीय लक्षणों को भी जाना और एकात्मक लक्षणों को भी जाना है इस आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारत एक संघ है जिसमें एकात्मक शासन के लक्षण विद्यमान है।

## 5.4 भारतीय संघ की विशेषताएं

भारतीय संघ की विशेषताएं की विशेषताएं निम्नलिखित है -

1.भारत एक ऐसा संघ है जिसके राज्य विनाशकारी है अर्थात इसके राज्यों का विनाश किया जा सकता है । एक राज्य से दो राज्य बनाए जा सकते हैं जैसा कि सन 2000 में उत्तराखंड, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ का गठन हुआ था।

2. भारतीय संघ में कुछ (असम, नागालैंड, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, सिक्किम त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, उत्तराखंड और त्रिपुरा) को विशेष राज्य का दर्जा दिया गया है। इस सुविधा के तहत केंद्र प्रायोजित योजनाओं (Central Sponsored Scheme) में केंद्र 90% का योगदान देता है, वही अन्य राज्यों में यह योगदान 60% का होता है।

3. राज्यसभा में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व नहीं है एक तरफ जहां संघ व्यवस्था वाले राज्य से संयुक्त राज्य अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के उच्च सदन में प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या समान है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्च सदन में प्रत्येक राज्य के 2 प्रतिनिधि उपस्थित हैं लेकिन भारत में राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या समान नहीं है अगर हम लोग उच्च सदन राज्यसभा की बात करें तो यहां पर विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व एकसमान नहीं है जैसे यूपी में राज्यसभा की 31 सीटें हैं राजस्थान में 10 सीट है और वही उत्तराखंड में राज्यसभा की 3 सीटें हैं।

संविधान की सर्वोच्चता केंद्र एवं राज्य विधायिका अगर कोई भी ऐसा कानून बनाते हैं जो कि भारत की संघीय व्यवस्था का अतिक्रमण करता है तो उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय उस कानून की न्यायिक समीक्षा करके उसे अवैध घोषित कर सकते हैं।

**कठोर एवं लचीला संविधान**

भारत की संघीय सरंचना को प्रभावित करने वाले प्रावधानों में अगर संशोधन किया जाता है तो विशेष बहुमत के साथ-साथ आधे राज्यों की स्वीकृति भी आवश्यक होती है जैसे

1. राष्ट्रपति के निर्वाचन एवं इसकी प्रक्रिया केंद्र एवं राज्य कार्यकारिणी की शक्तियों का विस्तार
2. उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय
3. केंद्र एवं राज्य के विधायी शक्तियों का विभाजन

संघीय प्रावधानों को छोड़कर अन्य प्रावधानों में संशोधन करने की प्रक्रिया कम कठोर

है इन प्रावधानों में संशोधन के लिए संसद के दोनों सदनों में साधारण बहुमत या विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है।

**साधारण बहुमत के आधार पर होने वाले संशोधन**

1.नए राज्यों का गठन

2.संसद में गणपूर्ति

3.राज्य विधान परिषद का निर्माण या समाप्ति

4.संसद में प्रक्रिया नियम

विशेष बहुमत के आधार पर होने वाले संशोधन

1.मूल अधिकार

2.राज्य के नीति निदेशक तत्व आदि

**न्यायपालिका**

मुख्य रूप से भारतीय संघ की न्यायिक व्यवस्था को तीन भागों में बांटा गया है सर्वोच्च न्यायालय,उच्च न्यायालय एवं जिला न्यायालय । सर्वोच्च न्यायालय भारतीय संघीय व्यवस्था के लिए अभिभावक का कार्य करता है। किसी विवाद की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम होता है। संविधान के संरक्षण एवं व्याख्या का अंतिम अधिकार सर्वोच्च न्यायालय का है। उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के अधीन कार्य नहीं करता है अपने क्षेत्राधिकार में यह स्वतंत्र रूप से कार्य करता है।इसका क्षेत्राधिकार राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेशों तक सीमित होता है। न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति केंद्र के साथ साथ राज्यों की भी होती है। उच्च न्यायालय राज्य विधानमंडल और केंद्र सरकार दोनों के द्वारा बनाए गए कानून एवं प्रशासन निर्णयों का संवैधानिक आधार पर परीक्षण कर सकता है।अधीनस्थ न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन एवं निर्देशानुसार कार्य करते हैं इसलिए इन्हें अधीनस्थ न्यायालय कहा जाता है। अधीनस्थ न्यायालय में जिला न्यायालय,जिला एवं सत्र न्यायाधीश का न्यायालय ,अधीनस्थ न्यायाधीश का न्यायालय,मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी का न्यायालय,मुसिफ न्यायालय आदि आते हैं।

**द्विसदनीय व्यवस्था**

भारतीय संविधान में द्विसदनीय विधायिका उच्च सदन और निम्न सदन के रूप में स्थापित है राज्य सभा,राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है वही लोकसभा पूर्ण रूप से देश की जनता का प्रतिनिधित्व करती है। राज्यसभा के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है वहीं लोकसभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा किया जाता है।

**लेखा जांच एजेंसी**

भारत का महालेखा परीक्षक ना केवल केंद्र के लिए लेखा परीक्षण का कार्य करता है बल्कि राज्य के लेखा परीक्षण का भी कार्य करता है। केंद्र सरकार के लेखा परीक्षक की रिपोर्ट संसद के समक्ष रखी जाती है वहीं राज्य की लेखा परीक्षा की रिपोर्ट विधानसभा के समक्ष रखी जाती है।

## 5.5 भारतीय संघवाद और राजनीति

भारतीय संघवाद में राजनीतिक परिदृश्य का अध्ययन तीन चरणों में कर सकते हैं,जिसका उल्लेख डॉ. स्वेता मिश्रा ने समकालीन भारत एक परिचय पुस्तक में प्रकाशित अध्याय भारतीय संघवाद एवं स्थानीय शासन में किया है। जो कि निम्नलिखित है[1]-

### 5.5.1 भारतीय संघ का प्रथम चरण

प्रथम चरण में नवीन भारतीय संघ के समक्ष बहुत चुनौतियां थी जैसे भाषाई आधार पर राज्यों के निर्माण की मांग संबंधी समस्या को कैसे दूर किया जाये एवं कैसे राष्ट्रीय एकीकरण करते हुए देश की अखंडता को स्थापित किया जाये।ऐसी परिस्थितियों में एक शक्तिशाली केंद्र की आवश्यकता थी और हुआ भी ऐसा इस चरण में नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस की ना केवल केंद्र में सरकार थी बल्कि राज्य में भी कांग्रेस की सरकार थी। केंद्र और राज्यों में एक ही पार्टी की सरकार थी इसलिए केंद्र की पॉलिसी और कार्यों का राज्य द्वारा किसी प्रकार का विरोध नहीं किया गया तथा भारतीय शासन व्यवस्था में हमें इस दौरान केंद्रीकरण देखने को मिलता है ।[1]

### 5.5.2 भारतीय संघ का दूसरा चरण

1967 में लोकसभा और प्रदेश विधानसभा में हुए चुनावों में केंद्र में कांग्रेस की सरकार बनी लेकिन पहले की अपेक्षा जीत का अंतर काफी कम हो गया तथा 8 राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ इसका मुख्य कारण बड़े नेताओं की कुर्सी की भूख का बढ़ना तथा आंतरिक गुठबंधी करना था। नेहरू जी की मृत्यु के बाद कांग्रेस लगातार कमजोर हो रही थी और इसमें फूट भी पड़ रही थी।एक तरफ सिंदी केट अपना दबदबा बढ़ा रहा था तो दूसरी तरफ इंदिरा गांधी थी। कांग्रेस को हराने के लिए विभिन्न पार्टियों ने गठबंधन का सहारा लिया। किसी-किसी राज्य में वामपंथी दक्षिणपंथी एक साथ नजर आए ।पश्चिम बंगाल और केरल में वामपंथी सरकार बनी। इस तरह इस चरण में भारतीय संघीय व्यवस्था में कुछ बदलाव देखने को मिले जैसे कुछ राज्यों ने लगातार केंद्र राज्य संबंधों में सुधार एवं राज्य के अधिकारों में वृद्धि की मांग की जैसे तमिलनाडु की सरकार ने 1973 में केंद्र-राज्य संबंधों के संबंध में राजमन्नार समिति का गठन किया। इस दौरान लगातार केंद्र ने अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग किया। केन्द्र की सरकार राज्यों की विपक्षी पार्टी की सरकार को अनुच्छेद 356 के आधार पर बर्खास्त कर रही थी। राज्यपाल ने भी इस दौरान केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य किया। ऐसा होने के पीछे राज्यों की राजनीति का गिरता स्तर भी था क्योंकि जोड़-तोड़ की राजनीति हो रही थी। विधायक अपनी पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में शामिल हो रहे थे जिससे उस समय की राज्य सरकार की स्थिति अस्थिर थी। 1975 में लगे राष्ट्रीय आपातकाल और 1976 में 42 वें संविधान संशोधन द्वारा सत्ता का एक बार फिर से केंद्रीकरण देखा गया एवं राज्य शक्तिहीन हो गए थे।1977 में आपातकाल के बाद बनी सरकार के काल में भी यही दौर चलता रहा और केंद्रीय सत्ता में जो पार्टी थी उसने अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग किया। इस चरण में केंद्र एवं राज्य संबंधों में सुधार की मांग को देखते हुए केंद्र सरकार ने 1983 में सरकारिया आयोग का गठन किया।[1]

### 5.5.3 भारतीय संघ का तीसरा चरण

इस चरण की शुरुआत 1980 के दशक के अंत से मानी जाती है। इसी चरण में वी.पी सिंह की अगुवाई में नेशनल फ्रंट की सरकार बनी। इस सरकार में मुख्य क्षेत्रीय पार्टी जैसे द्रविड़ मुनेत्र कड़गम(दी .एम.के),तेलगू देशम पार्टी(टीदी पी) एवं असम गढ़ परिषद्(ए.जी.पी) शामिल थी।अब आने वाला दौर गठबंधन की सरकारों का था क्षेत्रीय पार्टियों की भूमिका अब सरकार बनाने में अहम होने लगी चाहे वह 1991 में नरसिम्हा राव की सरकार हो या 1998 में एनदी ए और 2004 में यूपीए की सरकार हों ।इस दौर में क्षेत्रीय दलों के नेता भी प्रधानमंत्री बनते हुए दिखे तथा क्षेत्रीय पार्टियों के नेता केंद्र में भी बड़े पदों पर केंद्रीय मंत्री बने चाहे वह यूपीए सरकार में लालू प्रसाद यादव (रेल मंत्री) या फिर 1998 की एन.दी .ए की सरकार में नीतीश कुमार(रेलमंत्री)हो। इस प्रकार से गठबंधन के इस दौर में राज्यों की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगी और केंद्र का भी ध्यान क्षेत्रीय मुद्दों की ओर आकृष्ट होने लगा। अब केंद्र की राजनीति की दशा एवं दिशा निर्धारित करने में राज्यों की बड़ी भूमिका होने लगी। भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय पार्टियों की भूमिका अहम हो गई और राष्ट्रपति की भूमिका में भी बढ़ोतरी देखने को मिली। किसी भी पार्टी के बहुमत में ना होने के वजह से वह अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करके सरकार का गठन कर सकता थे। राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्तियों में बढ़ोतरी और राज्यों को देश की राजनीति में बढ़ती भूमिका ने एक नए परिदृश्य को जन्म दिया। इस प्रकार इस चरण में भारतीय संघ की संघीय दशा अब मजबूत हो रही थी तथा भारत एक सहकारी संघवाद के रूप में उभर रहा था ।इसी दौर में 1990 में अंतरराज्यीय परिषद का गठन हुआ तथा एस. आर.बोम्मई केस में यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया कि राज्य विधान सभा तब तक विघटित नहीं हो सकती जब तक राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा को दोनों सदनों में पास नहीं कर दिया जाता। इस केस में यह भी निर्णय लिया गया कि राष्ट्रपति शासन की वैधानिकता को न्यायपालिका में चुनौती दी जा सकती है।[1]

## 5.6 केंद्र-राज्य सम्बन्ध

भारतीय संविधान में केंद्र राज्य के मध्य सहयोग और समन्वय को साबित करने के लिए केंद्र राज्य संबंधों का उल्लेख अनुच्छेद 243 से 293 तक किया गया है। केंद्र राज्य के मध्य संबंध निम्नलिखित है

### 5.6.1 विधायी संबंध

पूर्ण रूप संपूर्ण भारत और भारत के किसी भी क्षेत्र के लिए कानून बना सकता है। वहीं राज्य पूरे राज्य अथवा राज्य के किसी क्षेत्र के लिए कानून बना सकता है। केंद्र-राज्य के विधायी संबंधों को 3 अनुसूचियों में बांटा गया है-संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची। संघ सूची में विषयों को सम्मिलित किया गया है जो राष्ट्रीय महत्व के साथ-साथ देश की एकता को भी प्रदर्शित करता है। इस सूची में सम्मिलित किसी विषय पर कानून बनाने का अधिकार संसद को है वर्तमान समय में इस सूची में कुल

100 विषय हैं जैसे डाक व तार,शेयर बाजार,परमाणु शक्ति,मुद्रा निर्माण,रेल, निगम कर, बैंकिंग बीमा आदि। राज्य सूची में सम्मिलित विषय क्षेत्रीय महत्त्व एवं विविधता को प्रदर्शित करते हैं। इस सूची में सम्मिलित विषय पर कानून बनाने का अधिकार राज्य विधानमंडल को है। वर्तमान समय में इस विषय में सम्मिलित कुल विषयों की संख्या 61 है जैसे-कृषि सिंचाई,भूमि कर,मनोरंजन कर पुलिस, न्याय प्रशासन,जेल एवं सुधारालय। समवर्ती सूची में ऐसे विषयों को सम्मिलित किया गया है जो कि स्थानीय महत्व के साथ-साथ राष्ट्रीय महत्व को भी प्रदर्शित करते हैं।इस सूची में कानून बनाने का अधिकार ना केवल संसद को है बल्कि राज्य विधायिका भी इस विषय पर कानून बना सकती है। वर्तमान समय में इस सूची में कुल 52 विषय हैं जैसे- फौजदारी कानून एवं प्रणाली, निवारक निरोध विवाह और विवाह विच्छेद ,पागलपन, सामाजिक सुरक्षा और बीमा शरणार्थियों की सहायता,श्रम कल्याण । अवशिष्ट शक्तियों पर कानून बनाने का अधिकार संघ को दिया गया है।यह बात स्पष्ट है कि केंद्र का कार्यक्षेत्र राज्य से बड़ा है लेकिन संविधान में विधायी झुकाव भी केंद्र की तरफ ही है।अनुच्छेद 249 के अनुसार राज्य सभा सदन में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई मतों के साथ प्रस्ताव पास करके यह घोषणा कर सकता है कि यह राष्ट्रहित में आवश्यक है कि संसद राज्य सूची में सम्मिलित विषयों पर कानून बनाए। ऐसी स्थिति में संसद राज्य सूची के विषय पर कानून बना सकता है। अनुच्छेद 250 के अनुसार राष्ट्रीय आपातकाल की स्थिति में संसद राज्य सूचियों के विषय पर कानून बना सकता है। अनुच्छेद 252 के अनुसार दो या दो से अधिक राज्यों के अनुरोध पर संसद उन राज्यों के विषयों पर जिन्होंने यह प्रस्ताव पास किया है कानून बना सकता है अनुच्छेद 253 के अनुसार केंद्र एवं संसद अंतरराष्ट्रीय संधियों समझौतों एवं निर्णयों का पालन करने के लिए राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है।राष्ट्रपति शासन के दौरान भी संसद सूची के विषय पर कानून बना सकता है। संघ सूची और राज्य सूची में टकराव अर्थात संघ द्वारा बनाए गए कानून और राज्य द्वारा बनाए गए कानून में टकराव की स्थिति में केंद्र का कानून ही मान्य होगा। समवर्ती सूची के किसी विषय को लेकर हुए टकराव की स्थिति में केन्द्रीय कानून,राज्य सूची पर प्रभावी होगा।[5]

### 5.6.2 प्रशासनिक संबंध

केंद्र राज्य के मध्य प्रशासनिक आयाम का अध्ययन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से कर सकते है -

1.संपूर्ण भारत में संघ सूची से संबंधित विषयों की कार्यकारी शक्ति केंद्र के पास है वहीं राज्य की सीमाओं के भीतर राज्य सूची से संबंधित विषयों की कार्यकारी शक्ति राज्य के पास है।समवर्ती सूची के विषयों से संबंधित कार्यकारी शक्ति राज्यों के पास है।

2.अनुच्छेद 365 के अनुसार राज्यों को केंद्र द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करना होगा।

3.संघीय व्यवस्थाओं में संघ स्तरीय सेवा और राज्य स्तरीय सेवा होती है। केन्द्रीय स्तर के अधिकारी केंद्र में अपनी सेवा देते है और राज्यस्तरीय सेवा के अधिकारी केवल राज्यों में अपनी सेवा देता है लेकिन भारतीय संघीय व्यवस्था में अखिल भारतीय सेवा एक ऐसी सेवा है जिसके अधिकारी न केवल केंद्र में अपनी सेवा देती है बल्कि राज्यों में भी अपनी सेवा देते है।

4.राष्ट्रीय आपातकाल के समय राज्य, केंद्र के अधीन रहती है और उसके दिशानिर्देशों के अनुसार कार्य करती है।

5.राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्य, राष्ट्रपति के अधीन हो जाता है राज्यपाल राष्ट्रपति के नाम पर राज्य सचिव की सहायता से अथवा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किसी सलाहकार की सहायता से राज्य प्रशासन का संचालन करता है।

6.अनुच्छेद 263 के तहत सामूहिक महत्व के विषयों पर चर्चा करने के लिए राष्ट्रपति अंतर राज्य परिषद का गठन कर सकता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1990 में राष्ट्रपति द्वारा अंतर राज्य परिषद का गठन किया गया है ।

7.अनुच्छेद 352 के अनुसार राष्ट्रीय अपातकाल के दौरान केंद्र किसी भी विषय पर राज्य सरकारों को निर्देशित कर सकता है।

प्रशासनिक आयाम में भी केंद्र सरकार को वरीयता प्राप्त है इस वरीयता का दुरुपयोग स्वतंत्रता के बाद से कई बार केंद्र सरकार ने किया है जिसके तरफ सरकारिया आयोग ने भी ध्यान आकृष्ट किया था ।कानून एवं व्यवस्था राज्य का विषय है लेकिन कई बार ऐसा देखा गया है। कि राज्य के अनुमति के बिना भी केंद्र ने कई बार केंद्रीय बलों की तैनाती राज्यों में की है। अफस्पा अभी भी केंद्र राज्य संबंधों में विवाद का विषय बना हुआ है।[5]

### 5.6.3 वित्तीय संबंध

संघ सूची के अंतर्गत कर लगाने वाले विषयों पर कर लगाने का अधिकार संसद के पास है। राज्य सूची के अंतर्गत कर लगाने वाले विषयों पर कर लगाने का अधिकार राज्य विधानसभा के पास है। 101 वें संविधान संशोधन से पहले समवर्ती सूची में कोई भी ऐसा विषय नहीं था। जिस पर कर लगाया जा सके।101 वे संविधान संशोधन के बाद जीएसटी को समवर्ती सूची में जोड़ा गया। कर लगाने की अवशिष्ट शक्तियां संसद के पास है जैसे गिफ्ट संपत्ति कर और व्ययकर ।संघ सूची और राज्य सूची के अध्ययन से हमें यह पता चलता है कि केंद्र के पास कर लगाने के ऐसे विषय हैं जो लगातार बढ़ते ही रहते हैं अर्थात जिससे केंद्र को बड़ी मात्रा में राजस्व प्राप्त होता है जो लगातार बढ़ते रहते हैं जैसे

आयकर एवं कॉर्पोरेट टैक्स। राज्य सरकार के पास ऐसे सामाजिक आर्थिक विषय है जिस पर व्यय लगातार बढ़ता ही रहता है।जैसे शिक्षा एवं स्वास्थ्य ।शिक्षा चूकी समवर्ती सूची का विषय है जिसे 42 वें संविधान संशोधन द्वारा राज्य सूची से समवर्ती सूची में जोड़ा गया ।राज्य शिक्षा के क्षेत्र में पहले से काफी कार्य कर रहा था शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर राज्य को बड़ी मात्रा में खर्च करना पड़ता है।इस प्रकार केंद्र और राज्य के बीच एक वित्तीय असंतुलन पैदा होता है क्योंकि केंद्र के पास राजस्व संग्रहण करने के स्रोत ज्यादा है और राज्यों के पास दायित्व ज्यादा है। इस असंतुलन को कम करने के लिए अनुच्छेद 280 के अंतर्गत वित्त आयोग का गठन किया गया है। वित्त आयोग केंद्र को करो से प्राप्त राजस्व में राज्यों के हिस्से का निर्धारण करके सरकार को सिफारिश करता है तथा वित्त आयोग केंद्र द्वारा राज्य को दिए जाने वाला सहायता अनुदान की भी सिफारिश करता है। केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय असंतुलन के कारण तनाव बना रहता है और राज्यों के द्वारा केंद्र पर यह आरोप रहता है कि उसके दायित्व के अनुरूप कर राजस्व का बंटवारा केंद्र नहीं कर रहा है। व्यापक विचार विमर्श से यह स्पष्ट है कि राज्यों के मुकाबले केंद्र की वित्तीय स्थिति बहुत ज्यादा मजबूत है और यह देश के एकात्मक व्यवस्था के तरफ झुकाव को प्रदर्शित करता है।

**अभ्यास प्रश्न**

1.वर्तमान समय में संघ सूचि में कुल कितने विषय है ?

2.जी एस टी का सम्बन्ध निम्नलिखित में से किस संविधान संशोधन अधिनियम से है ?

3.शिक्षा किस सूची का विषय है ?

4.भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के तहत वित्त आयोग का गठन किया गया है?

5.भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के तहत अंतर्राज्यीय परिषद् का गठन करने का प्रावधान किया गया है?

## 5. 7 शब्दावली

पुनरावलोकन – पुन; परीक्षण

गणपूर्ति- किसी सभा या सदन की बैठक के लिए सदस्यों की न्यूनतम संख्या

अवशिष्ट- शेष

## 5.8 साराशं

भारतीय संघ व्यवस्था के संबंध में विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न है कुछ विद्वान इसे संघात्मक व्यवस्था के रूप में देखने से इन्कार करते हुए इसे एकात्मक बोलते हैं।विभिन्न मतों के होने का यह भी कारण है कि भारत में एकात्मक व्यवस्था के साथ साथ संघात्मक व्यवस्था दोनों के लक्षण पाए जाते हैं।भारत की ऐसी स्थिति के पीछे के कारण ऐतिहासिक है चूकी भारत काफी लंबे समय तक ब्रिटिश शासन के अधीन रहा है इसलिए संविधान निर्माण के समय भारत के एक मजबूत केंद्र की आवश्यकता थी जो कि पूरे देश की एकता एवं अखंडता को संरक्षित रख सके। इसलिए संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के साथ-साथ एक मजबूत केंद्र के तत्वों को भी भारतीय संविधान में समाहित किया गया। भारतीय शासन व्यवस्था की यह खूबी है कि वह संघात्मक व्यवस्था के लक्षण होने के बावजूद भी विभिन्न परिस्थितियों में एकात्मक व्यवस्था के रूप में कार्य करता है। भारतीय राजनीति जैसे-जैसे परिपक्व हो रही है वैसे वैसे यहां संघात्मक व्यवस्था मजबूत होता जा रहा है और सहकारी संघवाद की तरह कार्य कर रहा है।

## 5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 100 विषय

2. 101 वे संविधान संशोधन

3. समवर्ती सूची

4. 280 अनुच्छेद के तहत

5. 263 अनुच्छेद के तहत

## 5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.सिन्हा, मनोज. 2012. समकालीन भारत एक परिचय.ब्लैक स्वान

2.गेना,सी बी.2010.तुलनात्मक राजनीति एवं राजनितिक संस्थाएं.विकास पब्लिकेशन हाउस प्रा.लि.

3.चन्द्र,बिपिन.2015.आजादी के बाद का भारत.हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली

4.johri, j.c.2005.Comparative Politics.sterling publishers private limited

5.lakshmikant,m.2014.indian polity.mcgraw hill education(india) private limited

6.malik,m asad.2019.changing dimensions of federalism in india: an appraisal.indian law institute

## 5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.सिन्हा, मनोज. 2012. समकालीन भारत एक परिचय.ब्लैक स्वान

2.गेना,सी बी.2010.तुलनात्मक राजनीति एवं राजनितिक संस्थाएं.विकास पब्लिकेशन हाउस प्रा.लि.

3.चन्द्र,बिपिन.2015.आजादी के बाद का भारत.हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली

## 5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संघ की विशेषताओं का संघात्मक व्यवस्था के सन्दर्भ में विश्लेषण कीजिये।

2.भारत में केंद्र राज्य संबंधों का विश्लेषण कीजिये।

# इकाई 6 –भारत संसदीय शासन प्रणाली

6.0- प्रस्तावना

6.1 – उद्देश्य

6.2- संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताएँ

6.3- संसदीय शासन प्रणाली के गुण

6.4- संसदीय शासन प्रणाली के दोष

6.5- संसदीय व्यवस्था की स्वीकार्यता के कारण

6.6- संसदीय एवं अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था की तुलना

6.7- संसदीय व्यवस्था के भारतीय एवं ब्रिटिश मॉडल में विभेद

6.8- सारांश

6.9- शब्दावली

6.10- अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.11- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.12- सहायक/उपयोगी पाठ्य सामाग्री

6.13- निबन्धात्मक प्रश्न

## 6.0 प्रस्तावना

लोकतन्त्रीय एवं सांविधानिक शासन प्रणालियों के अन्तर्गत शासन के राजनीतिक अंगो – विधानमंडल और कार्यपालिका में मोटे तौर पर दो तरह का सम्बन्ध देखने को मिलता है। इसके आधार पर संसदीय और अध्यक्षीय प्रणालियों में अन्तर किया जाता है। संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत कार्यपालिका संसद अर्थात् विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होती है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यदि उस पर से विधानमंडल का विश्वास उठ जाये तो विधानमंडल उसे पद से हटा सकता है। चूँकि इस प्रणाली के अन्तर्गत शासन का सूत्र मंत्रिमंडल के हाथो में रहने लगा है वही विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होता है, इसलिए इसने मंत्रिमंडलीय शासन प्रणाली का रूप धारण कर लिया है।

भारत का संविधान केन्द्र और राज्य दोनों में सरकार के संसदीय स्वरूप की व्यवस्था करता है। अनुच्छेद 74 व 75 केन्द्र में संसदीय व्यवस्था का उपबन्ध करते है और अनुच्छेद 163 व 164 राज्यों में संसदीय व्यवस्था का उपबन्ध करते है। आधुनिक लोकतान्त्रिक सरकारे, सरकार के कार्यपालिका और विधायिका के मध्य सम्बन्धो की प्रकृति के आधार पर संसदीय और अध्यक्षात्मक शासनों में वर्गीकृत होती है। सरकार की संसदीय व्यवस्था वह व्यवस्था है, जिसमे कार्यपालिका अपनी नीतियों एवं कार्यो के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। वही दूसरी ओर सरकार की अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था में कार्यपालिका अपनी नीतियों एवं कार्यो के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी नही होती और यह संवैधानिक रूप से अपने कार्यकाल के मामले में विधायिका से स्वतंत्र होती है।

संसदीय सरकार को 'कैबिनेट सरकार' या 'उत्तरदायी सरकार' या 'सरकार का वेस्टमिंस्टर स्वरूप' भी कहा जाता है तथा यह ब्रिटेन, जापान, कनाडा, भारत आदि में प्रचलित है। दूसरी ओर अध्यक्षात्मक सरकार को 'गैर उत्तरदायी' या 'गैर संसदीय या निश्चित कार्यकारी व्यवस्था' भी कहा जाता है और यह अमेरिका, ब्राज़ील, रूस; श्रीलंका आदि में प्रचलित है।

## 6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

1- संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताओ को समझ सकेंगे।
2- संसदीय शासन प्रणाली के गुण – दोषों को समझ पायेंगे।
3- संसदीय शासन प्रणाली और अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के अन्तर को समझ पायेंगे।
4- भारत में प्रचलित शासन प्रणाली की विस्तृत अवधारणा को समझ पायेंगे।

5- भारतीय शासन प्रणाली और ब्रिटिश शासन प्रणाली में समानता और अन्तर समझ पायेंगे।

## 6.2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताएँ

भारत में संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1- **नाममात्र की एवं वास्तविक कार्यपालिका** –संसदीय शासन प्रणाली में नाममात्र की कार्यपालिका (विधिक कार्यपालिका) व वास्तविक कार्यपालिका (वास्तविक कार्यकारी) पायी जाती है। इस व्यवस्था में राष्ट्रपति राज्य का नामिक मुखिया होता है, जबकि प्रधानमन्त्री सरकार का मुखिया होता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 74 प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद की व्यवस्था करता है, जो राष्ट्रपति को कार्य संपन्न कराने में परामर्श देगी। उसके परामर्श को मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य होगा।

2- **बहुमत प्राप्त दल का शासन** – जिस राजनीतिक दल को लोकसभा में बहुमत से सीटें प्राप्त होती है, वह सरकार बनाता है। उस दल के नेता को राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता है। जबकि अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री के परामर्श से ही करता है। जब किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नही होता है तो दलों के गठबन्धन को राष्ट्रपति द्वारा सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया जाता है।

3- **सामूहिक उत्तरदायित्व** – यह संसदीय सरकार का विशिष्ट सिद्धांत है। मन्त्रियों का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व होता है। वे एक टीम की तरह कार्य करते है। सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त इस रूप में प्रभावी होता है कि लोकसभा, प्रधानमन्त्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद को अविश्वास प्रस्ताव पारित कर हटा सकती है।

4- **राजनीतिक एकरूपता** – सामान्यत: मंत्रिपरिषद के सदस्य एक ही राजनीतिक दल से सम्बन्धित होते है और इस तरह उनकी राजनीतिक विचारधारा भी समान होती है।

5- **दोहरी सदस्यता** – मन्त्री विधायिका एवं कार्यपालिका दोनों के सदस्य होते है। कोई भी व्यक्ति बिना संसद का सदस्य बने अधिकतम 6 महीने तक ही मन्त्री बन सकता है।

6- **प्रधानमन्त्री का नेतृत्व** – सरकार की व्यवस्था में प्रधानमन्त्री नेतृत्वकर्ता की भूमिका निभाता है। वह मंत्रिपरिषद का, संसद का और सत्तारुढ दल का नेता होता है। इन क्षमताओं में वह सरकार के संचालन में एक महत्वपूर्ण एवं अहम् भूमिका का निर्वहन करता है।

7- **निचले सदन का विघटन** – संसद के निचले सदन (लोकसभा) को प्रधानमन्त्री की सिफारिश के बाद राष्ट्रपति के द्वारा विघटन किया जा सकता है। अर्थात् प्रधानमन्त्री, मंत्रिपरिषद का कार्यकाल पूर्ण होने से पहले नये चुनाव के लिए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटन की सिफारिश कर सकता है।

8- **गोपनीयता** – मन्त्री गोपनीयता के सिद्धांत पर कार्य करते है और अपनी कार्यवाहियों, नीतियों, और निर्णयों की सूचना नही दे सकते। अपना कार्य ग्रहण करने से पूर्व वे गोपनीयता की शपथ लेते है। मन्त्रियों को गोपनीयता की शपथ राष्ट्रपति दिलवाते है।

## 6.3 संसदीय शासन प्रणाली के गुण

सरकार की संसदीय शासन प्रणाली के निम्नलिखित गुण होते है –

1- **विधायिका एवं कार्यपालिका के मध्य सामंजस्य** – संसदीय व्यवस्था का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह सरकार के विधायी एवं कार्यकारी अंगो के बीच सहयोग एवं सहकारी सम्बन्धो को सुनिश्चित करता है। कार्यपालिका विधायिका का एक अंग है और दोनों अपने कार्यो में स्वतन्त्र है। परिणामस्वरूप इन दोनों अंगो के बीच विवाद के बहुत कम अवसर होते है।

2- **उत्तरदायी सरकारी** – अपनी प्रकृति के अनुरूप संसदीय व्यवस्था में उत्तरदायी सरकार का गठन होता है। मन्त्री अपने मूल एवं कार्याधिकार कार्यो के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होते है। संसद मन्त्रियों पर विभिन्न तरीको, जैसे – प्रश्नकाल, चर्चा, स्थगन प्रस्ताव, एवं अविश्वास प्रस्ताव, आदि के माध्यम से नियंत्रण रखती है।

3- **निरंकुशता का प्रतिषेध** – इस व्यवस्था के तहत कार्यकारी एक समूह में निहित रहती है न कि एक व्यक्ति में। यह प्राधिकृत व्यवस्था कार्यपालिका की निरंकुश प्रकृति पर रोक लगाती है, अर्थात् कार्यकारिणी संसद के प्रति उत्तरदायी होती है और उसे अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से हटाया जा सकता है।

4- **वैकल्पिक सरकार की व्यवस्था** – सत्तारूढ़ दल के बहुमत खो देने पर राज्य का मुखिया विपक्षी दल को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित कर सकता है। इसका तात्पर्य है कि नए चुनाव के बिना वैकल्पिक सरकार का गठन हो सकता है।इस पर डॉ जेनिंग्स कहते है, "विपक्ष का नेता वैकल्पिक प्रधानमन्त्री है'।

5- **व्यापक प्रतिनिधित्व** – संसदीय व्यवस्था में कार्यपालिका लोगो के समूह से गठित होती है। इस प्रकार यह सम्भव है कि सरकार के सभी वर्गों एवं क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व हो। प्रधानमन्त्री मन्त्रियों का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखता है।

## 6.4 संसदीय शासन प्रणाली के दोष

उपरोक्त गुणों के बावजूद संसदीय व्यवस्था भी अनेक दोषों से युक्त है, जो निम्नलिखित है-

**1- अस्थिर सरकार-** संसदीय व्यवस्था स्थायी सरकार की व्यवस्था नही करती है। इसकी कोई गारण्टी नही है कि कोई सरकार अपना कार्यकाल पूरा करेगी। मन्त्री बहुमत की दया पर इस बात के लिए निर्भर होते है कि वे अपने कार्यकाल को नियमित रख सके। एक अविश्वास प्रस्ताव या राजनीतिक दल परिवर्तन या बहुदलीय गठबन्धन सरकार को अस्थिर कर सकता है। मोरारजी देसाई, चौधरी चरण सिंह की सरकारे इसका उदाहरण है।

**2- नीतियों की निश्चितता का अभाव -** संसदीय व्यवस्था में दीर्घकालिक नीतियाँ लागू नही हो पाती है क्योंकि सरकार के कार्यकाल की अनिश्चित्तता बनी रहती है। सत्तारूढ़ दल में परिवर्तन से सरकार की नीतियाँ परिवर्तित हो जाती है। उदाहरण के लिए 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली सरकार ने पूर्व की कांग्रेस सरकार की नीतियों को पलट दिया। ऐसा ही कांग्रेस सरकार ने 1980 में सत्ता पर आने में किया।

**3- मंत्रिमंडल की निरंकुशता** – जब सत्तारूढ़ पार्टी को संसद में पूर्ण बहुमत प्राप्त होता है तो कैबिनेट निरंकुश हो जाती है और वह लगभग असीमित शक्तियों की तरह कार्य करने लगती है। लास्की इस सम्बन्ध में कहते है कि "संसदीय व्यवस्था कार्यकारिणी को तानाशाही का अवसर उपलब्ध करा देती है"। पूर्व ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैमजे म्योर भी 'कैबिनेट की तानाशाही' की शिकायत करते है।

**4- शक्ति पृथक्करण के विरुद्ध** – संसदीय व्यवस्था में विधायिका एवं कार्यपालिका एक साथ और अविभाज्य होते है। कैबिनेट विधायिका और कार्यपालिका दोनों की नेता होती है। इस सम्बन्ध में बैजहाट उल्लेख करते है, 'कैबिनेट विधायिका एवं कार्यपालिका को जोड़ने में हाइफन जैसी भूमिका निभाती है, जो दोनों को जोड़ने के लिए बाध्य है'। इस तरह सरकार की पूरी व्यवस्था शक्तियों को विभाजित करने वाले सिद्धांत के खिलाफ जाती है। वास्तव में यह शक्तियों का मेल है।

**5- अकुशल व्यक्तियों द्वारा सरकार का संचालन** – संसदीय व्यवस्था प्रशासनिक कुशलता से परिचालित नही होती है क्योंकि मन्त्री अपने क्षेत्र में निपुण नही होते। मन्त्रियों के चयन में प्रधानमन्त्री के पास सीमित विकल्प होते है। इसके अतिरिक्त मन्त्री अधिकाँश समय अपने संसदीय कार्यो, कैबिनेट की बैठको एवं दलीय गतिविधियों में व्यस्त रहते है।

## 6.5 संसदीय शासन प्रणाली की स्वीकार्यता के कारण

भारतीय संविधान के निर्माताओ ने संसदीय व्यवस्था को निम्नलिखित कारणों से प्रमुखता दी –

1- **व्यवस्था से निकट** – संविधान निर्माताओ ने संसदीय व्यवस्था को इसलिए भी अपनाया कि यह भारत में ब्रिटिश शासनकाल से ही यहाँ अस्तित्व में थी। संविधान के सदस्य के एम मुंशी ने तर्क दिया कि –" इस देश में पिछले तीस या चालीस वर्षो से सरकारी काम में कुछ उत्तरदायित्वो को शुरू कराया गया है। इससे हमारी संवैधानिक परम्परा संसदीय बनी है। इस अनुभव के बाद हमे पीछे क्यों जाना चाहिए और क्यों महान अनुभव को ख़रीदे"।

2- **उत्तरदायित्व को अधिक वरीयता** – संसदीय शासन व्यवस्था की उपयोगिता के सम्बन्ध में संविधान सभा के सदस्य डॉ भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में इस ओर इशारा किया कि एक लोकतान्त्रिक कार्यकारिणी को दो शर्तो से अवश्य सन्तुष्ट करना चाहिए – जिसमे पहला है स्थायित्व और दूसरा है उत्तरदायित्व। दुर्भाग्य से अब तक यह सम्भव नही हो सका कि ऐसी व्यवस्था को खोजा जाये, जिसमे दोनों समान स्तरों को सुनिश्चित किया जा सकता। अमेरिकी व्यवस्था ज्यादा स्थायित्व देती है, लेकिन उत्तरदायित्व कम देती है। दूसरी तरफ ब्रिटिश व्यवस्था ज्यादा उत्तरदायित्व देती है लेकिन स्थायित्व कम। प्रारूप संविधान ने कार्यपालिका की संसदीय व्यवस्था की सिफारिश करते हुए स्थायित्व की तुलना में उत्तरदायित्व को अधिक वरीयता दी है।

3- **विधायिका एवं कार्यपालिका के टकराव को रोकने की आवश्यकता** – भारतीय संविधान निर्माता चाहते थे कि विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच टकराव को रोका जाये, जो कि अमेरिका की राष्ट्रपति शासन प्रणाली में नही पाया जाता है। उन्होंने सोचा कि एक प्रारम्भिक लोकतान्त्रिक सरकार के इन दो घटकों के बीच संघर्ष को और स्थायी खतरे को वहन नही किया जा सकता। वे चाहते थे कि एक ऐसी सरकार बने, जो देश के सर्वांगीण विकास के लिए अनुकूल हो।

4- **भारतीय समाज की प्रकृति** – भारत, विश्व में सर्वाधिक मिश्रित राज्य एवं सर्वाधिक जटिल समाज वाला देश है। इस तरह संविधान निर्माताओ ने संसदीय व्यवस्था को अपनाया ताकि सरकार में विभिन्न वर्गों, विभिन्न क्षेत्र के व्यक्तियों के हित में अधिक अवसर सुलभ हो सके और राष्ट्रीय भावना को लोगो के बीच बढ़ाते हुए अखण्ड भारत का निर्माण हो सके।

संसदीय व्यवस्था को जारी रखा जाना चाहिए या इसे राष्ट्रपति व्यवस्था में परिवर्तित कर देना चाहिए, इस बात को लेकर 1970 के दशक से देश में बहस एवं वाद विवाद जारी है। इस मामले पर विस्तार से स्वर्ण सिंह समिति द्वारा विचार किया गया, जिसका गठन 1975 में कांग्रेस सरकार द्वारा किया गया था। समिति का मत था कि संसदीय व्यवस्था अच्छा कर रही है और इस तरह इसकी कोई ज़रूरत नही कि इसको राष्ट्रपति शासन व्यवस्था में परिवर्तित किया जाये।

## 6.6 संसदीय शासन एवं अध्यक्षीय शासन व्यवस्था की तुलना

1- संसदीय शासन व्यवस्था में दोहरी कार्यकारिणी होती है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में एकल कार्यकारिणी पायी जाती है।
2- संसदीय शासन व्यवस्था में चुनाव में बहुमत प्राप्त दल का शासन होता है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति एवं विधायिका का पृथक रूप से निश्चित अवधि के लिए निर्वाचन होता है।
3- संसदीय शासन व्यवस्था में सामूहिक उत्तरदायित्व पाया जाता है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव पाया जाता है।
4- संसदीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक एकरूपता पायी जाती है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में इसका अभाव पाया जाता है।
5- संसदीय शासन व्यवस्था में शक्तियों का सम्मिश्रण होता है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में शक्तियों का विभेद होता है।
6- संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमन्त्री का नेतृत्व होता है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति का नियंत्रण होता है।

7- संसदीय शासन व्यवस्था में विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच सामन्जस्य पाया जाता है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच टकराव की स्तिथि बनी रहती है।

8- संसदीय शासन व्यवस्था में प्रतिनिधित्व व्यापक रूप में पाया जाता है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में सीमित प्रतिनिधित्व पाया जाता है।

9- संसदीय शासन व्यवस्था में अकुशल व्यक्तियों द्वारा सरकार के संचालन की संभावना रहती है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में सरकार का संचालन विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है।

10- संसदीय शासन व्यवस्था शक्तियों के विभाजन के विरुद्ध है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था शक्तियों के विभाजन पर आधारित है।

11- संसदीय शासन व्यवस्था में नीतियों की निश्चितता नही बनी रहती है जब कि अध्यक्षीय शासन व्यवस्था में नीतियों में निश्चितता पायी जाती है।

## 6.7 संसदीय व्यवस्था के भारतीय एवं ब्रिटिश मॉडल में विभेद

भारत में संसदीय व्यवस्था विस्तृत रूप से ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था पर आधारित है। यद्यपि यह कभी भी ब्रिटिश सरकार के मॉडल की पूर्ण रूप से नक़ल नही रही। संसदीय व्यवस्था का भारतीय मॉडल कई मामलो में ब्रिटिश मॉडल से भिन्न है, जो निम्नलिखित है-

1- ब्रिटिश राजशाही के स्थान पर भारत में गणतंत्र पद्धति है। दूसरे शब्दों में, भारत में राज्य का मुखिया (राष्ट्रपति) निर्वाचित होता है, जबकि ब्रिटेन में राज्य का मुखिया (जो कि राजा या रानी होते है) आनुवंशिक है।

2- ब्रिटिश व्यवस्था संसद की संप्रभुत्ता के सिद्धांत पर आधारित है, जबकि भारत में संसद सर्वोच्च नही है और संसद की शक्तियों पर भी प्रतिबन्ध है क्योंकि यहाँ एक लिखित संविधान, संघीय व्यवस्था, न्यायिक समीक्षा और मूल अधिकार है।

3- ब्रिटेन में प्रधानमन्त्री को संसद के निचले सदन (हाउस ऑफ़ कॉमन्स) का सदस्य होना चाहिए, जब कि भारत में प्रधानमन्त्री संसद के दोनों सदनों में से किसी भी एक सदन का सदस्य हो सकता है।

4- सामन्यत: ब्रिटेन में संसद सदस्य बतौर मन्त्री नियुक्त किये जाते है। जब कि भारत में जो व्यक्ति संसद का सदस्य नही भी है, उसे भी 6 माह तक की अवधि के लिए मन्त्री बनाया जा सकता है। लेकिन इसके साथ शर्त यह है कि सम्बन्धित मन्त्री को आगे मन्त्री पद पर बने रहने के लिए 6 माह के भीतर संसद के किसी भी सदन का सदस्य बनना अनिवार्य होगा।

5- ब्रिटेन में मन्त्रियों की कानूनी ज़िम्मेदारी होती है, जब कि भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नही है। ब्रिटेन के विपरीत भारत में मन्त्री को राज्य के मुखिया के रूप में कार्यालयी कार्य में प्रति – हस्ताक्षर करना ज़रूरी नही होता।

6- ब्रिटिश कैबिनेट व्यवस्था में 'छाया कैबिनेट' (शैडो कैबिनेट) एक अनोखी संस्था है। इसे विपक्षी पार्टी द्वारा गठित किया जाता है ताकि सत्तारूढ़ दल के साथ सन्तुलन बना रहे और अपने सदस्यों को भावी मन्त्रालयी कार्यो के लिए तैयार किया जा सके। जब कि भारत में इस सम्बन्ध में ऐसी कोई भी व्यवस्था नही है।

## 6.8 सारांश

संसदीय शासन प्रणाली वह शासन प्रणाली है जिसमे वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिमंडल या मंत्रिपरिषद अपनी राजनीतिक नीतियों और कार्यो के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है जब कि नाममात्र की कार्यपालिका को उत्तरदायित्व विहीनता का स्थान प्राप्त होता है।

ग्रेट ब्रिटेन और भारत की शासन प्रणालियाँ संसदीय प्रणाली के उपयुक्त उदाहरण है। इनमे कार्यपालिका या मंत्रिमंडल संसद के प्रति उत्तरदायी होता है और यदि कही वह संसद का विश्वासपात्र न रह जाये तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता है।

आइवर जेनिंग्स ने संसदीय व्यवस्था को कैबिनेट व्यवस्था कहा है, क्योंकि इसमें शक्ति का केन्द्र बिन्दु कैबिनेट होता है। संसदीय सरकार को उत्तरदायी सरकार के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि इसमें कैबिनेट (वास्तविक कार्यकारिणी) संसद के प्रति उत्तरदायी होती है और इनका कार्यकाल तब तक चलता है, जब तक उन्हें संसद का विश्वास प्राप्त है। संसदीय व्यवस्था का प्रादुर्भाव करने वाली ब्रिटिश संसद के उद्भव के उपरान्त इसे 'सरकार का वेस्टमिंस्टर मॉडल' भी कहा जाने लगा है।

विगत में ब्रिटिश संविधान एवं राजनीतिक विशेषज्ञों ने प्रधानमन्त्री को कैबिनेट से सम्बन्ध के सन्दर्भ में "समानता के बीच प्रथम" कहा है। हाल ही में प्रधानमन्त्री की शक्तियाँ और स्तिथि कैबिनेट में बढ़ी है। वह ब्रिटिश राजनीतिक, प्रशासनिक व्यवस्था में प्रभावशाली भूमिका अदा करने लगा है, इसलिए बाद के राजनीतिक विश्लेषक, जैसे – क्रास्मैन, मैकिन्टोश एवं अन्य विद्वान् ब्रिटिश सरकार

की व्यवस्था को 'प्रधानमन्त्री शासित सरकार' कहने लगे है। यही स्तिथि भारत के सन्दर्भ में भी लागू होती है।

**अभ्यास प्रश्न –**

1- संसदीय व्यवस्था का उद्भव किस देश में हुआ?
2- भारत में मंत्रिमंडल की बैठको की अध्यक्षता कौन करता है?
3- भारत में कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियाँ किसके पास होती है?
4- 'सरकार का वेस्टमिंस्टर मॉडल' किस व्यवस्था को कहा जाता है?
5- किस शासन प्रणाली में सरकार की वास्तविक शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास होती है?

## 6.9 शब्दावली

1- **संवैधानिक शासन** – संविधानिक सरकार से तात्पर्य ऐसी सरकार से है जो संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार गठित, नियंत्रित व सीमित हो तथा व्यक्ति विशेष की इच्छाओं के स्थान पर विधि के अनुरूप ही संचालित होती हो।

2- **संसदीय शासन प्रणाली** – संसदात्मक शासन प्रणाली उस शासन प्रणाली को कहते है जिसमे कार्य पालिका का प्रधान (मुख्य कार्य पालिका) प्रधानमंत्री होता है। वही वास्तविक कार्य पालिका होती है। प्रधानमंत्री के नेतृत्व मे संगठित कार्य पालिका संसद के प्रति उत्तरदायी होती है।

3- **सामूहिक उतरदायित्व-** सामूहिक उत्तरदायित्व कैबिनेट की एकजुटता के सिद्धांत पर आधारित है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी एक मंत्री के विरुद्ध अविश्वास मतदान होने पर संपूर्ण मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र देना होता है।

4- **उत्तरदायी सरकार** – वह शासन जिमसें शासक वर्ग के व्यक्ति अपने कार्यो के लिये जनता या जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हो।

5- **शक्ति पृथकक्करण-** शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का अर्थ है कि लोकतंत्र के प्रत्येक स्तंभ - कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका - अलग-अलग कार्य करते हैं एवं अलग-अलग संस्थाओं के रूप में कार्य करते हैं।

6- **छाया कैबिनेट** – शैडो कैबिनेट एक शब्द है जो यूके की संसदीय परंपरा के आधार पर कुछ संसदीय लोकतंत्रों में लागू होता है। यह राजनेताओं का एक समूह है जो अपनी पार्टी में राजनीतिक पद तो रखते हैं, लेकिन जिनकी पार्टी सरकार में नहीं है (अर्थात एक विपक्षी पार्टी)। छाया मंत्रिमंडल का एक सदस्य छाया मंत्री होता है।

7- **सत्तारूढ़ दल** – लोकतांत्रिक संसदीय या राष्ट्रपति प्रणाली में सत्तारूढ़ दल या शासक दल वह राजनीतिक दल या गठबंधन है जो संसदीय प्रणाली के मामले में संसद में निर्वाचित पदों का बहुमत रखता है, या राष्ट्रपति प्रणाली में कार्यकारी शाखा रखता है, जो मामलों का प्रबंधन करता है।

## 6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- ब्रिटेन 2- प्रधानमन्त्री 3- प्रधानमन्त्री 4- संसदीय शासन व्यवस्था 5- अध्यक्षीय शासन व्यवस्था

## 6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- बसु, दुर्गादास 2009, भारत का संविधान, LexisNexis Butterworths Wadhwa Publication Nagpur।

2-अरोड़ा, एन दी , राजनीति विज्ञान, Mc Graw Hill Publication।

3-भारत का संविधान, Law Litreture Publication

4-त्रिवेदी, आर एन, भारतीय संविधान, विश्वभारती पब्लिकेशन दिल्ली।

5-अग्रवाल, प्रमोद कुमार,भारत का संविधान, ज्ञान गंगा प्रकाशन दिल्ली।

6-सिंहल, एस सी, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारत का संविधान, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर आगरा।

7-फड़िया, बी एल, भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

8-कश्यप सुभाष, हमारा संविधान, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत।

9-पाण्डेय, जयनारायण, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेंसी।

10-गाबा, ओम प्रकाश, तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा, मयूर बुक्स 4225/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

## 6.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1- त्रिवेदी, आर एन, भारतीय संविधान, विश्वभारती पब्लिकेशन दिल्ली।
2- अग्रवाल, प्रमोद कुमार,भारत का संविधान, ज्ञान गंगा प्रकाशन दिल्ली।
3- फड़िया, बी एल, भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
4- अरोड़ा, एन दी , राजनीति विज्ञान, Mc Graw Hill Publication।
5- गाबा, ओम प्रकाश, तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा, मयूर बुक्स 4225/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

## 6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1- संसदीय शासन प्रणाली को विस्तार से समझाइए।

2- संसदीय शासन प्रणाली और अध्यक्षीय शासन प्रणाली में अन्तर बताइए।

3- 'प्रधानमन्त्री संसदात्मक शासन प्रणाली की धुरी है' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

4- संसदीय शासन प्रणाली के ब्रिटिश और भारतीय मॉडल के विभेद को स्पष्ट कीजिए।

# इकाई 7-भारतीय संविधान में मूल अधिकार

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 मौलिक अधिकार

7.3 मूल अधिकार का अर्थ

7.4 भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार

7.5 जनहित याचिका

7.6 मूल अधिकारों में प्रतिबन्ध और न्यायलय में विभिन्न वाद

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 अभ्यास प्रश्न

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 7.0 प्रस्तावना

अधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियां हैं जिनके आभाव में कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता"। लोकतान्त्रिक देशों में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को सूचीबद्ध कर दिया जाता है। संविधान द्वारा प्रदान किये गये अधिकारों की सूची को अधिकारों का घोषणा पत्र कहा जाता है। यह घोषणा पत्र अधिकारों के उल्लंघन होने पर उपचार भी सुनिश्चित करता है । भारत के संविधान निर्माताओं ने हर व्यक्ति के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय उपलब्ध कराने के लिए मूल अधिकारों का प्रावधान किया। इस अध्याय में भारतीय संविधान में वर्णित मूलाधिकारों का अध्ययन करेंगे। मूलाधिकारों में मौजूद जीवन मूल्यों को समझने का प्रयास करेंगे।

## 7.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम जान सकेंगे कि

भारतीय संविधान ने हमें कितने मौलिक अधिकार दिए हैं ।

मौलिक अधिकार क्यूँ आवश्यक हैं।

मौलिक अधिकारों को कैसे सुरक्षित किया जा सकता है ।

भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकारों का मूल्य व दर्शन क्या हैं

**भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार**

डा. सुभाष कश्यप के अनुसार, ' संविधान शरीर है तो प्रस्तावना उसकी आत्मा, प्रस्तावना आधारशिला है तो संविधान उस पर खड़ी अटटालिका .....'

बोम्बई मामले में न्यायमूर्ति रामास्वामी ने कहा, ''उददेशिका संविधान का अभिन्न अंग है। लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था, संघात्मक ढांचा, राष्ट्र की एकता और अखण्डता, पंथनिरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय तथा न्यायिक पुरावलोकन संविधान के बुनियादी तत्वों में हैं''

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान ही नेताओं ने अधिकार के महत्व को जान लिया था । इसलिए 1928 में मोतीलाल नेहरु समिति ने अधिकारों के घोषणा पत्र की मांग की थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान

बनाते समय अधिकारों को संविधान में स्थान दिया गया , इन्हें मौलिक अधिकार (अत्यंत महत्वपूर्ण) कहा गया। मौलिक अधिकार साधारण क़ानूनी अधिकारों से अलग हैं मौलिक अधिकारों की गारंटी और सुरक्षा स्वयं संविधान करता है। मौलिक अधिकारों के दमन को रोकने की शक्ति और उत्तरदायित्व न्यायपालिका का है। अधिकार मानव समाज में आधुनिक युग की देन हैं। हमारे पूर्वजों को अधिकार प्राप्ति के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा है । फ्रांस की क्रांति, अमेरिकी क्रांति,रूस की क्रांति के बाद अधिकारों को व्यापक रूप में स्वीकृत किया गया।

भारत के संविधान में मौजूद मूल अधिकार समाज का आधार है जिससे एक व्यवस्था कायम की जाती है। यहां पर हम मूल अधिकारों में मौजूद जीवन मूल्यों को समझने का प्रयास करेंगे। किसी भी नागरिक के अधिकार उस समाज में मौजूद मूल्यों, परम्पराओं और नैतिक मान्यताओं से प्रभावित होते हैं और हमारा पूरा जीवन उसके अनुसार ही संचालित होता है। जब हम अपने अधिकारों को समग्रता से देखें तो वह भले ही संवैधानिक तौर पर कानून के अनुसार मान्य हैं लेकिन जब व्यवहार में उनका उपयोग किया जाता है तो वह समाजिक नियम परम्पराओं, नैतिक मूल्यों के अनुरूप ही लागू होते हैं।

भारतीय संविधान, भारत में एक संघीय व्यवस्था की स्थापना करता है। भारत कई संघों का एक राज्य है। सभी संघों के अपनी परम्परा, मूल्य, रीति-रिवाज़ और नैतिक, सामाजिक, मानदण्ड हैं जिसको भारतीय संविधान ने अपने में समाहित करके उनका प्रयोग करने की स्वतन्त्रता प्रदान की है। लेकिन इसके साथ ही भारतीय संविधान में एक नागरिकता को मान्यता देकर भारत के एकात्मक स्वरूप को भी बनाये रखा है। सम्पूर्ण भारतीयता की विविधता का सम्मान करते हुए विविधता में एकता के मूल्यों को स्थापित करना और उनको लागू करना भी हमें संविधान ही सिखाता है।

मूल अधिकार हमारे नैसिर्गिक अधिकार हैं ,जो कि एक मानव जीवन को संरक्षित, सवंर्धित तथा विकसित होने के अवसर प्रदान करते हैं। यदि कोई भी समाज अपने नैतिक व अवधराणात्मक मूल्यों के स्तर पर इनके लिए तैयार नहीं होता है तो कानूनी कितना भी कठोरता हो उनका उपयोग सम्भव नहीं होगा। मूल अधिकार किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता, उसके इन्सान होने की रक्षा के लिए बने हैं और इसीलिए समाज में प्रत्येक व्यक्ति के पास यह मूल्य होने चाहिए कि वह सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय के लिए इनका उपयोग अपने हित में कर सके और दूसरे व्यक्ति की स्वन्तन्त्रता तथा अधिकारों में बाधा न पहुचाये।

भारत का संविधान राष्ट्र की आत्मा है। यह पूरे देश को एक सूत्र में बांधता है। संविधान का उददेश्य देश के लाखों गरीब, भूखे, बेघर लोगों के जीवन की रक्षा करना है। प्रत्येक भारतीय को जीवन और आशा देना है। इसके साथ ही उसकी क्षमता अनुसार उसको जीवन मूल्यों को उन्नत करने, देश के

विकास में अपना योगदान देने हेतु अवसर प्रदान करना है। यह असमानता को समाप्त करने तथा न्याय को प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय संविधान में मौजूद अधिकार न्याय, समानता, भाईचारे के मूल्यों को बढ़ाने का मजबूत आधार है। भारतीय संविधान राज्य की विशिष्टताओं, यहां के नैतिक मूल्यों पर आधारित आदशों को अपनाकर अपने राज्य और नागरिकों के विकास के लिए प्रतिबद्ध है।

संविधान का समाजवादी स्वरूप जहां सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक न्याय को प्रत्येक नागरिक तक पहुंचाने के लिए प्रतिबद्ध है वहीं इसका लोकतन्त्रात्मक स्वरूप लोगों द्वारा लोगों के लिए चुनी गयी लोगों की सरकार के अन्तर्गत परिलक्षित होता है। यह इस बात को प्रर्दशित करता है कि यहाँ के नागरिकों को यह नैतिक व सामाजिक दायित्व प्रदान किया गया है कि वे देश के समग्र विकास के लिए एक ऐसी सरकार का चुनाव करें , जो कि बेहतर समाज का निर्माण कर सके। लोकतन्त्र जीने का एक तरीका है जो कि समाज में मौजूद मूल्यों का प्रतिबिम्ब होता है।

एक गणतन्त्रात्मक राष्ट्र के बतौर यदि हम अपने संविधान को देखते हैं तो हम पाते हैं कि यह भारत की मातृभूमि को एकसूत्र में पिरोकर सभी लोगों को समान रूप से इसके संसाधनों का हकदार बनाता है। इसका धर्मनिरपेक्ष स्वरूप यह बताता है कि देश का अपना कोई धर्म नहीं है। बल्कि प्रत्येक धर्म के मूल्यों, आर्दशों और नैतिक मानदण्डों को अपनाते हुए राष्ट्र के हित में बराबर का दर्जा दिया जाय। धर्म के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता है। सभी को धर्म को आबाधा रूप से मानने, आचरण करने और उसका प्रचार करने का हक है। संविधान निर्माताओं ने धर्मनिरपेक्षता का चयन करते हुए इस बात का ख्याल रखा है कि यह लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित है। जो सभी धर्मो के आचरण, आदर्श और मूल्यों का समुच्चय है।

ग्रेनविल आस्टिन ने 'दि इंडियन कांस्टिट्यूशन में (1966) में लिखा है, ''ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में मूल अधिकारों ने एक नई समानता का सृजन किया है ....और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा करने में सहायता की…..।उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के समक्ष अधिकार सम्बन्धी वादों की संख्या को देखने से अधिकारों के मूल्य का भान होता है। परमाधिकार रिटों के बार-बार उपयोग से यह पता चलता है कि जनता ने उन्हें भलिभांति स्वीकार किया है।''

हमारे संविधान के भाग 3 में मूल अधिकार दिये गये हैं उनका विस्तार भी भारत की परिस्थितियों, यहां के सामाजिक मूल्यों, नैतिकता और व्यक्ति के समग्र जीवन पर केन्द्रित करते हुए लिखा गया है। मूल अधिकारों की विशेषता यह है कि वे राज्य द्वारा पारित विधियों से ऊपर हैं। उन्हें देश की मौलिक विधि यानी कि भारतीय परिवेश यहां के नागरिकों के जीवन से जुडे तमाम पहलुओं के अनुसार संविधान में

स्थान दिया गया है। आमतौर पर संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया के अलावा इनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।मूल अधिकार नैसर्गिक न्याय के योग्य होते हैं। न्यायापालिका इन अधिकारों की रक्षा के लिए सभी उपयोगी कदम उठाते हैं।

अनु. 13 का खंड (2) के अनुसार '' राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है और इस खंड के उल्लंघन में बनाई गई प्रत्येक विधि शून्य होगी ''

मौलिक अधिकार नागरिकों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने और बेहतर जीवन जीने का अवसर प्रदान करते हैं। मौलिक अधिकार केवल नागरिकों को ही सुरक्षा प्रदान नहीं करते बल्कि संविधान में मौजूद आर्दशों को भी बढ़ावा देते हैं।

भारत की सरकार एवं नागरिक भारत को प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी पंथ निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित कराने के लिए वचनबद्ध है।

भारतीय संविधान की कल्पना एक कल्याणकारी राज्य के रूप में की है। नवीन राजनीतिक दर्शनशास्त्र जो कि प्रगतिशील विचारधारा है, उसको ध्यान में रखकर भारत को कल्याणकारी राज्य का दर्जा दिया गया है। यह इस विचार को स्थापित करता है कि लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए समाज सेवा करना बेहतर आदर्शो को स्थापित करना राज्य का कर्तव्य है।

## 7.3 मूल अधिकार का अर्थ

अधिकार सामान्यतया व्यक्ति की उन मांगों में से है जिन्हें समाज स्वीकार करता है व राज्य संरक्षित करता है । लास्की का मत है कि अधिकारों के बिना मानव अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता है। अधिकार राज्य के अंतर्गत व्यक्ति को प्राप्त होने वाली ऐसी अनुकूल परिस्थितिया और अवसर हैं जिनसे उसे आत्म विकास में सहायता मिलती है । वे अधिकार जो व्यक्ति के जीवन के लिए मौलिक तथा अनिवार्य होने के कारण संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किये जाते हैं और जिन अधिकारों में राज्य द्वारा भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, मूल अधिकार कहलाते हैं। मूल अधिकार

न्याय योग्य होते हैं अर्थात न्यायपालिका इन अधिकारों की रक्षा के लिए सभी आवश्यक कदम उठा सकती है।

राष्ट्र की एकता तथा आम जनता के हितों के अनुरूप किसी भी राज्य द्वारा अब तक बनाए गए मानव अधिकारों के चार्टरों में से सम्भवतया सर्वाधिक विस्तृत चार्टर संविधान के भाग -3 में शामिल है। इसके बारे में न्यायमूर्ति राजेन्द्र गड़कर ने कहा है, "यह संविधान द्वारा इस देश में लाई गयी लोकतन्त्रात्मक जीवन पद्वति की ठोस नींव तथा उसका अपरिहार्य अंग है।" (सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य)

## 7.4 भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान नेहरू रिपोर्ट तथा करांची अधिवेशन में अधिकारों की व्यापक रूपरेखा बनायीं गयी। अमेरिकी संविधान से भारतीय संविधान में मूल अधिकारों को शामिल किया गया। संविधान सभा में संविधान के निर्माण हेतु कुछ समितियां बनायीं गयी थी जिसमें से एक समिति मूल अधिकारों और अल्पसंख्यकों से सम्बंधित समिति थी। मूल अधिकारों को भारतीय संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक स्थान दिया गया है।

**7.4.1 समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)** - विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण – अनुच्छेद 14- किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। इसके पीछे यही अवधाराणात्मक मूल्य हैं कि सभी इंसान बराबर हैं और किसी भी आधार पर भेदभाव करना मानवीयता के विरूद्ध है। '' समानता और विधि के समान संरक्षण की धारणा राजनीतिक लोकतन्त्र में सामाजिक और आर्थिक न्याय को अपनी परिधि में ले लेती है'' (डालमिया सीमेन्ट भारत लि. बनाम यूनियन ऑफ़ इण्डिया (1996) स्वस्थ सामजिक व्यवस्था के सम्यक मूल्यांकन के लिए विधि के समक्ष समता और विधि सम्मत शासन की धारणा परस्पर जुड़ती है। राज्य का यह कर्तव्य है कि वह भेदभाव और मनमानेपन के संबंध में अपने नागरिकों के भय को दूर करे। विधि के समक्ष समानता में अधिकारीयों एवं नागरिकों के लिए एक ही विधि का प्रयोग होता है। राष्ट्रपति व राज्यपाल को विधि के समक्ष समानता से छुट प्रदान की गयी है। (अनुच्छेद 361)

अनुच्छेद 15 के अनुसार "राज्य किसी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग या जन्मस्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।"राज्य न केवल इस के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता बल्कि सार्वजनिक स्थानों, कुओं, तलाबों, सड़कों आदि स्थानों के उपयोग के लिए किसी प्रकार का प्रतिबन्ध

नहीं लगा सकता। यह किसी समाज के उन्नत नैतिक मूल्यों का प्रतीक है। महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रवाधान बनाना भी इसके अन्तर्गत आता है।

अनुच्छेद 15 का खण्ड 1 कहता है कि राज्य का कोई भी कार्य चाहे वह राजनैतिक, सिविल या अन्य प्रकार का हो केवल धर्म, मूलवंश, जाति या जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर नागरिकों के बीच कोई विभेद नहीं करेगा। इसका अर्थ यह है कि किसी विशेष धर्म या जाति या लिंग आदि के आधार पर किसी व्यक्ति के साथ राज्य अन्य धर्म या जातियों आदि की तुलना में केवल इस आधार पर पक्षपात नहीं करेगा कि वह विशेष धर्म का है, जाति का है अथवा लैंगिक है।भारतीय संविधान की यह बड़ी उपलब्धि है कि यदि किसी नागरिक के साथ कोई विभेद होता है तो वह हमारे देश कि उच्चतम न्यायालय से राहत प्राप्त कर सकता है।अवसर की समानता का सही-सही अर्थ केवल विधिक समानता से ही नहीं है। इसका अस्तित्व केवल असमानताओं के अभाव पर ही नहीं वरन् हर श्रेणी में योग्याताओं की मौजूदगी और उत्कृष्टता के अवसर पर निर्भर करता है।

अनुच्छेद 16 प्रत्येक नागरिक को रोजगार एवं राज्य के अंतर्गत नियुक्ति के सामान अवसर का प्रावधान करता है , परन्तु संसद विधि का निर्माण कर सकती है जिसमें राज्य की सेवाओं में उसके निवासियों को प्राथमिकता दी जा सके।

अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का अन्त- अस्पृश्यता यानी जाति के आधार पर भेदभाव का हमारा संविधान निषेध करता है। ऐसे किसी भी कृत्य या व्यवहार के लिए राज्य अथवा व्यक्ति को कानून जुर्म के अन्तर्गत माना जायेगा। इसको रोकने के लिए नागरिका अधिकार का संरक्षण अधिनियम 1955 और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार (निवारण) अधिनियम 1989 है। हालांकि आज भी हमारे देश में कई रीतियां व चलन मौजूद हैं जो कि जातिगत भेदभाव तथा उत्पीड़न को कायम रखते हैं।

अस्पृश्यता की परिभाषा न तो संविधान में दी गयी है। यह उपधारणा है कि इस शब्द का अर्थ सभी जानते हैं। यह उस सामाजिक पद्धति के प्रति निर्देश करता है जिसमें कुछ दलित वर्गों या जातियों को उनके जन्म के कारण ही हेय दृष्टि से देखा जाता है। और तथाकथित उच्च जातियों के लोगों से समागम में उन्हें कुछ निर्योग्यताएं होती हैं। इस अधिनियम में कुछ कार्यों को जब वे अस्पृश्यता के आधार पर किये जाते हैं तब अपराध माना गया है। उनके लिए दण्ड का प्रवाधान किया गया है।

अनुच्छेद 18 उपाधियों का अन्त - राजशाही के काल में या जब भारत में लोकतन्त्र नहीं था तब बड़े राजा-रजवाड़े और नबाव आदि उपाधियों के आधार पर समाज के आम लोगों से स्वयं को उच्च मानते

थे। किन्तु संविधान में इस बात का विशेष प्रवधान किया गया कि किसी भी प्रकार से एक व्यक्ति कानून की नज़र में उच्चत्तर या कमतर ना हो। यह संविधान में मौजूद लोकतान्त्रिक मूल्यों का ही परिणाम है।इसके अंतर्गत किसी प्रकार की उपाधियाँ राज्य द्वारा नहीं दी जाएँगी परन्तु राज्य, अकादमिक एवं सैन्य उपाधियाँ प्रदान कर सकता है। बालाजी राघवन वाद में पुरस्कार व उपाधियों में अंतर बताया गया है। इस वाद में न्यायपालिका ने पद्म श्री, पद्म भूषण, पद्म विभूषण को पुरुस्कार बताया है।

## 7.4 .2. स्वतन्त्रता का अधिकार ( अनुच्छेद 19 से 22)

भारतीय संविधान कुछ सकारात्मक अधिकार भी अपने नागरिकों प्रदान करता है जो किसी मानवीय जीवन की जरूरत होती है। संविधान की उद्देश्यिका में घोषित स्वतन्त्रता के आदर्श को मूल अधिकारों के इस अनुच्छेद में आसानी से समझा जा सकता है। संविधान के ये छः मूल अधिकार विश्व में हमारे स्वतन्त्रता के अधिकारों के रूप में जाने जाते हैं।

अनुच्छेद 19 मूल अधिकार के अध्याय का मूल आधार माना जा सकता है। जिसमें वाक् स्वतन्त्रता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का शान्तिपूर्वक सम्मेलन का संगम या संघ बनाने का भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र आबाध भ्रमण का, भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का और कोई वृत्ति, आजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार होगा।(लेकिन उपरोक्त सभी आधिकार राज्य लोक व्यवस्था या सदाचार या भारत की सम्प्रभुता या अखंडता के हित में निर्बन्धित की जा सकती है।)

यह अधिकार नागरिकों को जहां स्वयं के जीवन को उन्नत करने के लिए प्रत्येक अवसर प्रदान करता है। ताकि कोई भी नागरिक अपनी उन्नति के साथ राष्ट्र उन्नति में अपना योगदान दे सके।इसके साथ ही राज्य की देश की सम्प्रभुता की रक्षा तथा लोक व्यवस्था के हितों का भी ध्यान रखा गया है। यानी कि किसी भी नागरिक को यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि वह अपनी स्वतन्त्रता के मूल्यों तथा नैतिकता के भीतर पालन करे ताकि किसी अन्य नागरिक की स्वतन्त्रता का हनन न हो।

## अनुच्छेद 20 अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण –

इस अनुच्छेद के अनुसार किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तक दोषी नहीं ठहराया जायेगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या वह उससे अधिक दण्ड (Penalty) का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी। कानून तोड़ने के

अलावा किसी काम के करने पर किसी व्यक्ति को दोषी नहीं माना जा सकता है। किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए दो बार सजा नहीं दी जा सकती है। और यह कि किसी व्यक्ति को स्वयं के विरूद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

## अनुच्छेद 21 प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता का संरक्षण -

किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं। इंग्लैंड के संविधान के समान ही भारत के संविधान में भी दैहिक स्वतन्त्रता, बंदी प्रत्यक्षीकरण की न्यायिक रिट द्वारा सुनिश्चित की गयी है।

यह किसी भी नागरिक का वह अधिकार है जिसमें कि किसी भी व्यक्ति को जीवन जीने की स्वतन्त्रता देता है। यह अधिकार विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया संविधान में इस प्रकार स्थान पाती है कि यह अधिकार न्यायप्रिय हो ताकि किसी भी नागरिक को अपने निजी जीवन में सभी अवसर प्रदान करते हुए जीवन जीने की संभावनाएं मिल पायें।

अनुच्छेद 19 और 21 के बीच विभाजन नहीं किया जा सकता है। अनु.21 में दैहिक स्वतन्त्रता अभिव्यक्ति का परिवेश अत्यंत विस्तारवान है। इसमें अनेक प्रकार के अधिकार आते हैं। इनमें से कुछ को अनु. 19 में सम्मिलित करके उन्हें विशेष संरक्षण दिया गया है।

यदि कोई कानून किसी व्यक्ति के नैसिर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन करती है तो वह अविधिमान्य मानी जायेगी। उच्चतम न्यायालय का मानना है कि जीवन का अधिकार केवल उत्तरजीवी होने या पाशविक जीवन से कुछ अधिक होता है और इसमें मानव गरिमा के साथ जीवित रहना सम्मिलित होता है। इसमें निलम्बन काल में न्यूनतम निर्वाह भत्ता का अधिकार और वे सारे पहलू सम्मिलित होते हैं जो मानव जीवन को सार्थक, पूर्ण और सम्मानजनक बनाने के लिए जरूरी होत हैं।

86 वें संविधान संशोधन द्वारा अनु.21 (क) को जोड़ा गया जिसमें 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य प्रावधान किया गया। उच्चतम न्यायालय में ''केपिटेशन फीस केस'' (मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य (1992) में कहा गया है कि शिक्षा का अधिकार का सीधा संबंध प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से संबंध रखता है। प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार बिना शिक्षा के अधिकार के अधूरा है। क्योंकि शिक्षा ही किसी नागरिक को बेहतर जीवन की स्थितियां प्रदान करने में सहायक होती हैं।

इसी अधिकार के तहत 6 से 14 वर्ष आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रवाधान किया गया है। यह प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार है। वास्तव में यह लोकतान्त्रिक मूल्यों में निहित है कि जिस समाज में बच्चों को बेहतर शिक्षा दी जायेगी वही समाज हर स्तर पर प्रगति कर सकता है।

अनुच्छेद 22 किसी व्यक्ति को गिरफ़्तारी एवं निरोध से संरक्षण प्रदान करता है। किसी भी व्यक्ति को ममानी से बंदी नहीं बनाया जा सकता है। उसे कारण जानने व वकील से परामर्श लेने का अधिकार होगा और 24 घंटे के अन्दर न्यायपालिका के सामने प्रस्तुत किया जायेगा।

**7.4.3 शोषण कि विरूद्ध अधिकार – (अनुच्छेद 23-24 ) -** मानव के दुर्व्यापार और बलातश्रम का प्रतिषेध

1 मानव के दुर्वव्यापार यानी उनको खरीदना और बेचना तथा अनैतिक कार्यों में लगाना कानून अपराध है। यदि कोइ भी व्यक्ति ऐसा कार्य करता है तो वह कानून के तहत दोषी माना जायेगा।

2 बेगार यानी किससी भी व्यक्ति को बिना मेहनताना दिये जबरदस्ती काम लेना या ऐसा करने के लिए बाध्य करना बलात श्रम के अन्तर्गत आता है।

3 कोई भी ऐसा श्रम जो जबरदस्ती करवाया जाता हो।

4 संविधान राज्य को यह दायित्व देता है कि लोक हित में यदि कोई कार्य करना अनिवार्य हो तो जाति, धर्म, लिंग, वंश वर्ग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा।

अनुच्छेद 24 के अनुसार कारखाने आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध-

इस अनुच्छेद के प्रवाधानानुसार 14 वर्ष के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जायेगा। हालांकि भारत में जितनी गरीबी है उसमें यह सम्भव नहीं होता है। गरीब परिवारों के बच्चे बहुत कम उम्र में काम में लग जाते हैं। लेकिन इस कानून के कारण एक डर बना रहता है, जिसके कारण 14 साल से कम उम्र के बच्चों के काम पर लगाये जाने की संभावनाएं कम हो जाती हैं।

### 7.4.4 धर्म की स्वतन्त्रता -अनुच्छेद 25

प्रत्येक व्यक्ति को अंन्तःकरण की और धर्म के आबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने का अधिकार होगा।इस अनुच्छेद के अनुसार सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता है अपने धर्म को मानने उसके अनुरूप आचरण करने, उसका प्रचार करने का हक हमें संविधान प्रदान करता है। इसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार न तो किसी व्यक्ति को है और न राज्य को। हालांकि लोकव्यवस्था, नैतिकता तथा स्वास्थ्य के आधार पर इन पर रोक लगाई जा सकती है। अनुच्छेद 26 के अनुसार धार्मिक गतिविधियों के प्रबंध का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 28 के तहत राज्य द्वारा निर्मित और राज्य निधि से संचालित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती।

## 7.4.5 संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार – (अनुच्छेद 29 और 30)

भारत राज्य क्षेत्र में रहने वाले निवासी नागरिकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार है। राज्य नींति से पोषित किसी भी संस्था में शिक्षा, पाने के लिए धर्म, जाति, भाषा, वंश के आधार पर किसी भी नागरिक को वंचित नहीं कर सकते हैं। अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यक वर्गों को धर्म और भाषा पर आधारित अपनी रुचि की शिक्षा संस्था की स्थापना तथा प्रशासन का अधिकार है। राज्य द्वारा धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यकों के प्रबंधन में स्थापित शिक्षा संस्थनों को अनुदान देने में भेदभाव नहीं किया जायेगा। अल्पसंख्यक शब्द को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है।उच्चतम न्यायलय के अनुसार अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थओं में शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू नहीं होता है। 42वे संविधान संसोधन द्वारा जोड़ा गया है कि यदि राज्य ऐसी संस्था के लिए जमीन ले रहा हो तो बाजार दर पर मुआवजा दिया जायेगा।

भारत के मूल संविधान में अनुच्छेद 31 में संपत्ति का अधिकार था जो 44 वें संवैधानिक संसोधन द्वारा 1978 में विधिक अधिकार के रूप में बदल दिया गया।सम्पत्ति के अधिकार को मूल अधिकारों में से निकाल दिया गया क्योंकि 1950 में आर्थिक तौर पर जंमीदारी प्रथा के कारण अत्यधिक असमानता थी। यदि सम्पत्ति का अधिकार मूल अधिकार के अन्तर्गत रहता तो जंमीदारी उन्मूलन संभव ही नहीं था। इसलिए नैतिक तोर पर प्रत्येक नागरिक को जीने के समान अवसर मिल सकें इसके लिए इस अधिकार को मौलिक अधिकार से हटाया गया। अब जो छः मौलिक अधिकार हैं उनको इसी रोशनी में देखने की जरूरत है।

## 7.4.6 संवैधानिक उपचारों का अधिकार – (अनु-32)

यह मौलिक अधिकार अन्य मौलिक अधिकारों का संरक्षण करता है। आंबेडकर का मानना था कि इस मूलाधिकार की अनुपस्थिति में संविधान शून्य प्राय हो जायेगा। उन्होंने अनुच्छेद 32 को संविधान की आत्मा कहा है। अनुच्छेद 32 के अनुसार व्यक्ति मौलिक अधिकारों को क्रियान्वित करने के लिए उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकता है। मौलिक अधिकार को लागू करने की शक्ति उच्चतम न्यायालय को प्राप्त है। अनुच्छेद 32 (2) के अंतर्गत उच्चतम न्यायलय मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के आदेश, निर्देश, रिट या प्रलेख जारी कर सकता है। उच्चतम न्यायलय पांच प्रकार की रिटें जारी करता है –

1. **बंदी प्रत्यक्षीकरण** – इसके द्वारा न्यायलय व्यक्ति को सशरीर अपने सामने उपस्थित करवाता है , जिससे उसे बंदी बनाये जाने के कारणों को जाना जा सके।
2. **परमादेश** – यदि किसी सरकारी पद पर बेठे व्यक्ति ने अपने काम में लापरवाही की हो तो न्यायलय अधिकारी को आदेश देता है।यह आदेश उच्चतम न्यायलय अधिनस्त न्यायलय को भी दे सकता है।
3. **अधिकार प्रेच्छा** – न्यायलय सरकरी पद पर बैठे व्यक्ति के दावे की वैधता की जाँच करता है। दावा सही न निकलने पर व्यक्ति को पद से हटाया जा सकता है।
4. **उत्प्रेक्षा** – इसके जरिये उच्चतम न्यायलय कोई भी मामला अपने पास मांग सकता है।
5. **प्रतिषेध** – प्रतिषेध के अंतर्गत उच्चतम न्यायलय निचले न्यायलय को सम्बंधित मामले में काम करने से मन कर देता है।

   अनुच्छेद 32 के अंतर्गत उच्चतम न्यायलय के द्वरा रिट जारी होता है और अनुच्छेद-226 के अंतर्गत उच्च न्यायलय में रिट जारी होती है।

## 7.5 जनहित याचिका और अनुच्छेद - 32 प्रस्तावना

मूल अधिकारों के उल्लंघन होने पर सामान्यतः वही व्यक्ति उच्चतम न्यायलय जा सकता था , जिसके अधिकारों का हनन हुआ हो और इसे वादी-प्रतिवादी प्रक्रिया खा जाता है। 1980 के दशक में इस प्रक्रिया में कुछ बदलाव आया कि कोई तीसरा व्यक्ति भी मूल अधिकारों को लागू करवाने के लिए न्यायलय जा सकता है। यदि समाज में सार्वजानिक हित का उल्लंघन किया जा रहा हो। इस प्रक्रिया को जनहित याचिका कहा गया।

## 7.6 मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध और न्यायलय में विभिन्न वाद

अनुच्छेद 33 के अनुसार संसद सैन्य बलों व अर्द्ध सैनिक बलों के सदस्यों के मूल अधिकारों को प्रतिबंधित कर सकती है । इसके अंतर्गत संसद ने सेना एक्ट, 1950, एयर फ़ोर्स एक्ट 1950, नेवी एक्ट 1950, पुलिस फ़ोर्स अधिकार परिसीमन एक्ट 1966 और सीमा सुरक्षा बल एक्ट, 1968 का निर्माण किया गया है।

अनुछेद 34 के अंतर्गत भारत के किसी क्षेत्र में यदि सैन्य एक्ट लागू है तो संसद विधि द्वारा सैन्य बल के काम को उचित ठहरा सकती है।

**मूल अधिकारों पर वाद**

शंकरी प्रसाद वाद बिहार राज्य में न्यायपालिका के अनुसार मूलाधिकारों को अनुच्छेद 13 (2) के सामान्य विधि द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता बल्कि अनुच्छेद 368 में वर्णित संविधान संशोधन विधि से संशोधित किया जा सकता है।

गोलकनाथ वाद पंजाब राज्य में 11 न्यायाधीशों की पीठ ने निर्णय देते हुए कहा कि मूल अधिकार अत्यंत पवित्र और महत्वपूर्ण हैं, जिनका संशोधन नहीं किया जा सकता है। न्यायपालिका ने अनुच्छेद 13 (2) और अनुच्छेद 368 के अंतर को भी समाप्त कर दिया।इस लिए संविधान संशोधन के जरिये भी मूल अधिकार को संशोधित नहीं किया जा सकता है।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद में न्यायपालिका ने गोरखनाथ वाद के निर्णय को बदल दिया । न्यायपालिका ने कहा कि संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है जिसमें मूलाधिकार भी शामिल हैं। इस वाद में न्यायपालिका ने आधारभूत ढाचे का सिद्धांत दिया , जिसके अनुसार संसद संविधान के आधारभूत ढाँचे में संशोधन नहीं कर सकती है । मौलिक अधिकार का जो भाग संविधान के आधारभूत ढाँचे में शामिल है संसद उसका संशोधन नहीं कर सकती है।

**अभ्यास प्रश्न**

1 मूल अधिकारों की संख्या कितनी है ?

2 मौलिक अधिकारों की रक्षा किस अनुच्छेद के तहत होती है ?

3 मूल अधिकार भारतीय संविधान के किस भाग में है ?

4 सबसे पहले किस देश के संविधान में मूल अधिकार को स्थान दिया गया?

5 संसद ने सेना एक्ट, 1950 का निर्माण किस अनुच्छेद के अंतर्गत किया?

## 7.7 सारांश

मौलिक अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है। अधिकार मानव समाज में आधुनिक युग की देन हैं। अधिकारों की प्राप्ति के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा है । फ्रांस की क्रांति, अमेरिकी क्रांति, के बाद अधिकारों को व्यापक रूप में स्वीकृत किया गया। सबसे पहले अमेरिकी संविधान में मूल अधिकारों को स्थान मिला। रुसी क्रांति ने सामाजिक- आर्थिक अधिकारों को बढ़ावा दिया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान नेहरू रिपोर्ट तथा करांची अधिवेशन में अधिकारों की व्यापक रूपरेखा बनायीं गयी। मूल अधिकारों को भारतीय संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक स्थान दिया गया है।भारतीय संविधान में मौजूद अधिकार न्याय, समानता, भाईचारे के मूल्यों को बढ़ाने का मजबूत आधार है। भारतीय संविधान राज्य की विशिष्टताओं, यहां के नैतिक मूल्यों पर आधारित आदशों को अपनाकर अपने राज्य और नागरिकों के विकास के लिए प्रतिबद्ध है। समय समय पर न्यायपालिका द्वारा मूलाधिकारों के सन्दर्भ में व्याख्याएं व निर्णय दिए गये जिससे मूलाधिकारों को समझने में आसानी हुई।

## 7.8 शब्दावली

बंदी प्रत्यक्षीकरण- सशरीर उपस्थित होना

परमादेश - आज्ञा देना

उत्प्रेक्षण – मांग लेना

## 7.11 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. 6 2. अनुच्छेद 32 3. भाग- 3 4. अमेरिका
5. अनुच्छेद 33

## 7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डा.दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान

2. भारत का संविधान, डा. बालेन्द्र सिंह

3. भारत का संविधान , डा. पी.दी . मैथ्यू

7.13 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

## 7.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. मौलिक अधिकार से आप क्या समझते है ? भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों की व्याख्या कीजिये।

# भारतीय संविधान में मूल कर्तव्य

**8.0 प्रस्तावना**

**8.1 उद्देश्य**

**8.2 वैश्विक संविधानों में मूल कर्तव्य की स्वीकार्यता**

**8.3 भारतीय संविधान में मूल कर्तव्य**

**8.4 मूल कर्तव्यों का महत्त्व**

**8.5 मौलिक कर्तव्यों के सम्बन्ध में वर्मा समिति की सिफारिशें**

**8.6 मूल कर्तव्यों की आलोचना**

**8.7 अभ्यास प्रश्न**

**8.8 सारांश**

**8.9 शब्दावली**

**8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

**8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ**

**8.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री**

**8.13 निबंधात्मक प्रश्न**

## 8.0 प्रस्तावना

भारत के 48वें मुख्य न्यायाधीश एन०वी० रमन्ना ने 76वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर मौलिक कर्तव्यों के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए कहा कि – "हमारा संविधान मौलिक दस्तावेज है जो नागरिकों और सरकार के बीच संबंधों को नियंत्रित करता है। हालाँकि इसने हमें अपरिहार्य अधिकार प्रदान किए हैं परन्तु साथ ही यह हमारे लिए कुछ मौलिक कर्तव्य भी सुनिश्चित करता है। मौलिक कर्तव्य मात्र पांडित्यपूर्ण या तकनीकी नहीं हैं, उन्हें सामाजिक परिवर्तन की कुंजी के रूप में शामिल किया गया था"।

प्राचीन भारतीय दर्शन में, कर्तव्य की अवधारणा प्रायः धर्म की अवधारणा से जोड़ कर देखी जाती रही है। धर्म ब्रह्मांड की नैतिक और नैतिक व्यवस्था को संदर्भित करता है और इसे प्राकृतिक कर्तव्य या जिम्मेदारी के रूप में देखा जाता है जिसे प्रत्येक व्यक्ति को पूरा करना चाहिए। विशिष्ट कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ किसी की सामाजिक स्थिति, जीवन स्तर और व्यक्तिगत क्षमताओं के आधार पर भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, हिंदू परंपरा में, किसी व्यक्ति के कर्तव्यों को चार व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है जिन्हें वर्णाश्रम धर्म के रूप में जाना जाता है, जिसमें ब्राह्मण (पुजारी और विद्वान), क्षत्रिय (योद्धा और शासक), वैश्य (व्यापारी और किसान), और शूद्र (श्रमिक वर्ग) के कर्तव्य शामिल हैं।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में, मौलिक कर्तव्यों के विचार को एक अवधारणा के रूप में स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया गया है। हालाँकि, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की अवधारणा विभिन्न दार्शनिक धाराओं (मतों ) और ग्रंथों में देखी जा सकती है। भारतीय दर्शन एक सदाचारी जीवन जीने के महत्वपूर्ण पहलू के रूप में नैतिक आचरण और किसी की जिम्मेदारियों की पूर्ति पर जोर देता है। जबकि विशिष्ट कर्तव्य विभिन्न दार्शनिक प्रणालियों में भिन्न हो सकते हैं, कुछ सामान्य सूत्र हैं जो कुछ दायित्वों को पूरा करने के महत्व पर प्रकाश डालते हैं।

इसी प्रकार, कर्तव्यों की अवधारणा जैन धर्म, बौद्ध धर्म और अन्य दार्शनिक परम्पराओं में देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए, जैन धर्म अहिंसा के विचार और सभी जीवित प्राणियों के साथ सम्मान और करुणा का व्यवहार करने के सिद्धांत पर जोर देता है। इसमें किसी भी जीवित प्राणी को नुकसान पहुंचाने से बचने और उनकी सुरक्षा को बढ़ावा देने का कर्तव्य शामिल है। दूसरी ओर, बौद्ध धर्म नैतिक आचरण की अवधारणा पर ध्यान केंद्रित करता है, जिसे शील के नाम से जाना जाता है। यह पाँच उपदेशों के रूप में जाने जाने वाले नैतिक दिशानिर्देशों के एक सेट (संकलन) की रूपरेखा तैयार करता है, जिसमें हत्या, चोरी, व्यभिचार , झूठ बोलना और नशीले पदार्थों का सेवन करने से बचना शामिल है। ये उपदेश बौद्धों के लिए एक संपूर्ण और दयालु जीवन जीने के लिए नैतिक कर्तव्यों के रूप

में काम करते हैं। मूल कर्त्तव्य राज्य और नागरिकों के मध्य एक सामाजिक अनुबंध है। जो किसी देश के संविधान द्वारा वैधता प्राप्त करता है। अधिकारों के सापेक्ष यह भी महत्त्वपूर्ण है कि सभी नागरिक समाज और राज्य के प्रति अपने दायित्वों के निर्वहन के संदर्भ में ईमानदार रहें। कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में भी राज्य के प्रति नागरिकों के कर्त्तव्यों का उल्लेख मिलता है।

## 8.1 उद्देश्य

1) मूल कर्तव्यों अवधारणा को समझ पाएंगे
2) संविधान में मूल कर्तव्यों को शामिल करने के कारणों की पड़ताल कर पाएंगे
3) मूल कर्तव्यों के महत्त्व को जान पाएंगे

## 8.2 वैश्विक संविधानों में मूल कर्त्तव्य की स्वीकार्यता

मौलिक कर्तव्य एक ऐसी धारणा है जो किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति नैतिक दायित्व और प्रतिबद्धता की भावना व्यक्त करती है। लोगों को दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, अर्थात् अपने परिवार, कार्यस्थल और अंततः आधुनिक राज्य के प्रति कर्तव्य। प्राचीन रोमन दार्शनिक सिसरो ने भी अपनी रचना 'दी ऑफिसिस' (ऑन ड्यूटीज़) में कर्तव्य पर चर्चा की है, जहां उनका मानना है कि कर्तव्य चार अलग-अलग तरीकों से आ सकते हैं जिसके स्रोत हैं - बुद्धि, न्याय, साहस और संयम। यदि कोई अपने कर्तव्यों का ठीक से पालन करता है, तो यह उस बात का द्योतक है कि दूसरों के मूल अधिकारों की रक्षा की जा रही है और इसके विपरीत यदि किसी के मूल अधिकारों की रक्षा हो रही है तो उसे एक नागरिक के तौर पर अपने कर्तव्यों का सम्यक निर्वहन करना चाहिए। वास्तव में, कोई भी व्यक्ति अपने उचित कर्तव्यों का पालन किए बिना अधिकारों का आनंद नहीं ले सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि कोई व्यक्ति अपने कर्तव्यों को पूरा करता है तो वह अपने बुनियादी अधिकार प्राप्त करने की नैतिक स्थिति में आ जाता है। कई देशों ने अपने संविधान में मौलिक कर्तव्यों को शामिल किया। पूरे विश्व में ऐसे देशों के उदाहरण हैं जहाँ मूल कर्तव्य को उनके संविधानों में जगह मिली। तत्कालीन सोवियत संघ, पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना, भारत, पोलैंड, अल्बानिया, चेकोस्लोवाकिया, नीदरलैंड, यूगोस्लाविया, डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ वियतनाम, जापान और इटालियन रिपब्लिक। वास्तव में, यूएसएसआर दुनिया का पहला देश था जिसने अपने संविधान में मौलिक कर्तव्यों को जगह दी।

प्रारंभ में संविधान के अंतर्गत नागरिकों के लिये मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था नहीं की गई थी, परंतु समय के साथ समाज में असामाजिक व देश विरोधी तत्त्वों की गतिविधियों में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप ऐसी गतिविधियों के प्रति नागरिकों को जागरूक करने तथा उनमें कर्त्तव्यबोध की भावना का प्रसार करने

के लिये वर्ष 1976 में संविधान के भाग-4 क में अनुच्छेद-51 (क) के अंतर्गत मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था की गई। 1976 के संविधान संशोधन के अंतर्गत 10 मूल कर्तव्यों को शामिल किया गया था जबकि वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन के अंतर्गत 11 वें मूल कर्तव्य को जोड़ा गया। 42वां संवैधानिक संशोधन स्वर्ण सिंह समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों के आलोक में लाया गया था। स्वर्ण सिंह समिति की स्थापना 1976 में इंदिरा गांधी सरकार द्वारा की गई थी। समिति के अध्यक्ष स्वर्ण सिंह थे। समिति ने भारतीय नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों पर भारत के संविधान में एक नया भाग शामिल करने की सिफारिश की थी। 42वां संशोधन आपातकाल (1975-1977) की अवधि के दौरान पारित किया गया था। इस संशोधन के अनुसार, सशस्त्र बलों और पुलिस से संबंधित लोगों सहित लोगों से कुछ मौलिक कर्तव्यों का पालन करने की अपेक्षा की गई थी। 2002 में 86वें संवैधानिक संशोधन ने 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा प्रदान करना उनके माता-पिता का मौलिक कर्तव्य बना दिया। इस संशोधन ने बच्चों की शिक्षा को भी मौलिक अधिकार बना दिया। इन संशोधनों के बाद, मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख अनुच्छेद 51 ए में किया गया है, संविधान के भाग IVA में नागरिकों के कुछ मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख है।

## 8.3 भारतीय संविधान में मूल कर्तव्य

अनुच्छेद-51ए में निहित मौलिक कर्तव्यों में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 29(1) के साथ समानता है। जिसमें कहा गया है कि "प्रत्येक व्यक्ति का समुदाय के प्रति कर्तव्य है जिसमें अकेले उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र और पूर्ण विकास संभव है"। 42वें और 86वें संवैधानिक संशोधन के पारित होने के बाद, भारत के नागरिकों के 11 मौलिक कर्तव्य हैं। जो इस प्रकार हैं:

- संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें।
- स्वतंत्रता के लिये राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोये रखें और उनका पालन करें।
- भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें तथा उसे अक्षुण्ण रखें।
- देश की रक्षा करें और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।
- भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करें जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग आधारित सभी प्रकार के भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।

- हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझें और उसका परिरक्षण करें।
- प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव आते हैं, की रक्षा करें और संवर्द्धन करें तथा प्राणीमात्र के लिये दया भाव रखें।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
- सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें।
- व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करें जिससे राष्ट्र प्रगति की ओर निरंतर बढ़ते हुए उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।
- 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बीच के अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना। यह कर्त्तव्य 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़ा गया।

## 8.4 मूल कर्त्तव्यों का महत्त्व

मूल कर्तव्य राष्ट्र विरोधी एवं असामाजिक गतिविधियों जैसे- राष्ट्र ध्वज जलाना, सार्वजनिक संपत्ति को नष्ट करना या सार्वजनिक शांति को भंग करना आदि के विरुद्ध लोगों के लिये एक चेतावनी के रूप में कार्य करते हैं। मूल कर्त्तव्य नागरिकों के लिये प्रेरणास्रोत हैं, उनमें अनुशासन और प्रतिबद्धता को बढ़ाते हैं। वे इस सोच को उत्पन्न करते हैं कि नागरिक केवल मूक दर्शक नहीं हैं बल्कि राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति में सक्रिय भागीदार हैं। अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय ये नागरिकों को अपने देश के प्रति कर्त्तव्य की याद दिलाते हैं। नागरिकों को अपने देश, समाज और साथी नागरिकों के प्रति अपने कर्त्तव्यों के संबंध में भी जानकारी रखनी चाहिये। मूल कर्तव्य अदालतों को किसी विधि की संवैधानिक वैधता एवं उनके परिक्षण के सम्बन्ध में सहायता करते हैं। 1992 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि किसी कानून की संवैधानिकता की दृष्टि से व्याख्या में यदि अदालत को पता लगे कि मूल कर्तव्यों के सम्बन्ध में विधि में प्रश्न उठते हैं तो अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 (6 स्वतंत्रताओं ) के सन्दर्भ में इन्हें तर्कसंगत माना जा सकता है और इस प्रकार ऐसी विधि को असंवैधानिकता से बचाया जा सकता है। मूल कर्तव्य विधि द्वारा लागू किये जाते हैं। इनमें से किसी के भी पूर्ण होने पर या असफल रहने पर संसद उनमें उचित अर्थदंड या सजा का प्रावधान कर सकती है ।

**तत्कालीन विधि मंत्री एच०आर० गोखले** ने संविधान लागू होने के 26 वर्षों बाद मूल कर्तव्यों को शामिल करने के कारणों पर बात करते हुए कहा कि " स्वतंत्र भारत के बाद विशेषतः जून 1975 को आपातकाल की पूर्व संध्या पर लोगों के एक वर्ग ने स्थापित विधिक व्यवस्था का सम्मान करने की अपनी मूल प्रतिबद्धता के प्रति कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। मूल कर्तव्यों सम्बन्धी पीठ के प्रावधानों

का आन्दोलनकारी लोग , जिन्होंने विगत में राष्ट्र विरोधी आन्दोलन और असंवैधानिक विद्रोह किये हों , पर संयमी प्रभाव होगा।

**तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी** ने संविधान में मूल कर्तव्यों को जोड़ने को उचित ठहराते हुए यह तर्क दिया कि इससे लोकतंत्र को मजबूती मिलेगी। उन्होंने कहा कि "मूल कर्तव्यों का नैतिक मूल्य अधिकारों को कम करना नहीं होना चाहिए लेकिन लोकतान्त्रिक संतुलन बनाते हुए लोगों को अपने अधिकारों के सामान कर्तव्यों के प्रति भी सजग रहना चाहिए"। संसद में विपक्ष ने संविधान में कांग्रेस सरकार द्वारा मूल कर्तव्यों को जोड़े जाने का कड़ा विरोध किया। यद्यपि मोरारजी देसाई के नेतृत्व में नई जनता सरकार ने आपातकाल के बाद इन मूल कर्तव्यों को समाप्त नहीं किया। उल्लेखनीय है कि नई सरकार 43वें संशोधन अधिनियम (1977 ) एवं 44 वें संविधान संशोधन (1978 ) के द्वारा 42वें संविधान संशोधन अधिनियम (1976 ) में अनेक परिवर्तन करना चाहती थी। इससे इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि संविधान में मूल कर्तव्यों को जोड़ा जाना दरअसल समय की मांग थी। वर्ष 2002 में 86वें संशोधन अधिनियम के द्वारा एक अन्य मूल कर्तव्य को संविधान में जोड़ते हुए इसकी अपरिहार्यता और स्पष्ट हो गयी।

मौलिक कर्तव्य गैर-प्रवर्तनीय और गैर-न्यायोचित हैं। संविधान में इन कर्तव्यों को सीधे लागू करने का कोई प्रावधान नहीं है। इसका मतलब यह है कि किसी भी नागरिक को मौलिक कर्तव्य के उल्लंघन के लिए अदालत द्वारा दंडित नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में, मौलिक कर्तव्य भाग IV के राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों के समान हैं। मौलिक कर्तव्यों को भारतीय संविधान के भाग-III के अंत में नहीं रखा गया था जो कि प्रवर्तनीय एवं बाध्यकारी हैं लेकिन इन्हें भाग-IVA में शामिल किया गया है जो कि गैर-न्यायसंगत और गैर-प्रवर्तनीय है। मौलिक कर्तव्यों की प्रवर्तनीयता के संबंध में भारत का मामला कुछ अन्य उदाहरणों से अलग है। इन उदाहरणों में तत्कालीन यूएसएसआर, यूगोस्लाविया और अल्बानिया शामिल थे। भारत के विपरीत, इन देशों के संविधानों ने कर्तव्यों को कानूनी रूप से लागू करने योग्य बनाया। स्वर्ण सिंह समिति की रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के अनुसार भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्यों को शामिल किया गया है। वीकेआरवी राव (राव और सिंह 1976) ने स्वर्ण सिंह समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों की इस आधार पर आलोचना की कि यदि उनके उल्लंघन के लिए कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की जाती है तो मौलिक कर्तव्यों का पालन नहीं किया जा सकता है। उन्होंने तर्क दिया कि लोगों में कर्तव्यों का पालन करने के लिए साहस और इच्छा की कमी है। इसलिए, यदि कर्तव्य कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं तो उनका ठीक से पालन नहीं किया जा सकता है। अधिकारों का नैतिक आधार नहीं होता, उन्हें लागू करने योग्य कर्तव्यों के साथ उचित रूप से आनंद लिया जा सकता है।

## 8.5 मौलिक कर्तव्यों के सम्बन्ध में वर्मा समिति की सिफारिशें

मौलिक कर्तव्यों का पालन करने की आवश्यकता पर, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 1998 में भारत सरकार को एक नोटिस जारी कर देश के नागरिकों को मौलिक कर्तव्य सिखाने की योजना के बारे में पूछा। इस नोटिस के जवाब में, भारत सरकार ने मौलिक कर्तव्यों के क्रियान्वयन सम्बन्धी पहलुओं की जांच करने और लोगों को शिक्षित और शिक्षित करने वाले कदमों की सिफारिश करने के लिए न्यायमूर्ति जे एस वर्मा समिति की अध्यक्षता में एक समिति की स्थापना की, जिसे नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों पर वर्मा समिति (1999) के रूप में जाना जाता है। मौलिक कर्तव्यों का पालन करने की आवश्यकता के बारे में वर्मा समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की :

क) मौलिक कर्तव्य सार्वजनिक जीवन में नागरिकों के स्तर को बढ़ाएंगे। अतः प्रत्येक व्यक्ति को इन कर्तव्यों का पालन एवं प्रचार करना चाहिये।
ख) सार्वजनिक पद धारकों को स्वार्थ या भाई-भतीजावाद से बचना चाहिए। उनकी सर्वोच्च प्राथमिकता व्यक्तिगत हितों के बजाय सार्वजनिक हितों की सेवा करना होनी चाहिए।
ग) सार्वजनिक कार्यालय के कामकाज में सत्यनिष्ठा मुख्य सिद्धांत होना चाहिए।
घ) सार्वजनिक पद के धारकों को अपने निर्णयों और कार्यों के लिए जनता के प्रति जवाबदेह होना चाहिए।
ङ) उन्हें अपने द्वारा लिए गए सभी निर्णयों और कार्यों के बारे में यथासंभव खुला रहना चाहिए।
च) सरकारी अधिकारियों को पद पर रहते हुए ईमानदारी बरतनी चाहिए।
छ) नेतृत्व इस अर्थ में बहुत महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक पद पर बैठे लोगों को नेतृत्व कौशल से इन सिद्धांतों को बढ़ावा देना चाहिए और एक उदाहरण स्थापित करना चाहिए

## 8.6 मूल कर्तव्यों की आलोचना

जबकि संविधान में मौलिक कर्तव्यों को शामिल करने का उद्देश्य नागरिक जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देना और समाज के ढांचे को मजबूत करना है, परन्तु विभिन्न दृष्टिकोणों से इसे आलोचना का भी सामना करना पड़ा है। मौलिक कर्तव्यों की कुछ सामान्य आलोचनाओं में शामिल हैं :

**प्रवर्तनीयता का अभाव :** कई देशों में, मौलिक कर्तव्य गैर-न्यायोचित हैं, जिसका अर्थ है कि उन्हें पूरा करने में विफल रहने वाले नागरिकों के लिए कोई कानूनी परिणाम नहीं हैं। मौलिक अधिकारों के विपरीत, जिन्हें अदालतों के माध्यम से लागू किया जा सकता है, मौलिक कर्तव्यों में अक्सर प्रवर्तन के लिए एक तंत्र का अभाव होता है, जिससे नागरिकों में इन्हें गंभीरता से लेने के लिए प्रेरणा की कमी हो सकती है।

**व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर ग्रहण :** आलोचकों का तर्क है कि मौलिक कर्तव्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता का उल्लंघन कर सकते हैं। जबकि मौलिक अधिकार नागरिकों को राज्य के हस्तक्षेप से बचाते हैं, मौलिक कर्तव्य ऐसी स्थिति पैदा कर सकते हैं जहां राज्य नागरिकों के लिए कुछ व्यवहार और मूल्यों को निर्धारित करता है, जो संभावित रूप से व्यक्तिगत स्वतंत्रता से समझौता करता है।

**अस्पष्टता और व्यक्तिपरकता:** मौलिक कर्तव्यों को तैयार करने में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा व्यापक और व्याख्या के लिए खुली हो सकती है, जिससे इस बारे में अनिश्चितता पैदा हो सकती है कि किन विशिष्ट कार्यों या व्यवहारों की आवश्यकता है। स्पष्टता की यह कमी इन कर्तव्यों को पूरा करने में उनकी कथित विफलता के लिए व्यक्तियों को जिम्मेदार ठहराने की प्रक्रिया को चुनौतीपूर्ण बना सकती है।

**सांस्कृतिक और विविधता संबंधी चिंताएँ :** कुछ आलोचकों का तर्क है कि मौलिक कर्तव्य कुछ सांस्कृतिक या धार्मिक मूल्यों को दूसरों की तुलना में प्राथमिकता दे सकते हैं, संभावित रूप से अल्पसंख्यक समूहों या विभिन्न मान्यताओं वाले लोगों को हाशिए पर धकेल सकते हैं। इससे राज्य की कर्तव्यों की परिभाषा और सामाजिक दायित्वों पर नागरिकों के विविध दृष्टिकोण के बीच तनाव पैदा हो सकता है।

**मौजूदा कानूनों के साथ अतिरेक :** कुछ लोगों का तर्क है कि मौलिक कर्तव्य अनावश्यक हैं क्योंकि ऐसे प्रावधानों में उल्लिखित कई कर्तव्य पहले से ही मौजूदा कानूनों, आचार संहिता और सामाजिक मानदंडों द्वारा कवर किए गए हैं । इन कर्तव्यों को संविधान में जोड़ना व्यावहारिक के बजाय प्रतीकात्मक के रूप में देखा जा सकता है।

**महत्वपूर्ण मुद्दों से ध्यान भटकाना :** आलोचकों का सुझाव है कि मौलिक कर्तव्यों पर ध्यान केंद्रित करने से देशों के सामने आने वाली अधिक महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों से ध्यान भटक सकता है। कर्तव्यों पर जोर देने के बजाय, संसाधनों और प्रयासों को गरीबी, असमानता और अन्य गंभीर मुद्दों को संबोधित करने की दिशा में निर्देशित किया जा सकता है।

**राजनीतिक जोड़ तोड़ :** एक चिंता है कि राजनेता या सरकारें विशिष्ट एजेंडा या विचारधाराओं को आगे बढ़ाने के लिए मौलिक कर्तव्यों का उपयोग कर सकती हैं, जो संभावित रूप से संवैधानिक प्रावधानों की निष्पक्षता और तटस्थता को कमजोर कर सकती हैं।

संविधान में मौलिक कर्तव्यों को शामिल करने पर विचार करते समय नागरिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देने और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के बीच संतुलन बनाना आवश्यक है। मौलिक कर्तव्यों की

प्रभावशीलता और प्रभाव काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि उन्हें नागरिकों और सरकार द्वारा कैसे तैयार किया जाता है, क्रियान्वित किया जाता है और माना जाता है।

**8.7 अभ्यास प्रश्न —**

प्रश्न.1. भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्य क्या हैं?

अ) संविधान द्वारा नागरिकों को दिए गए अधिकार। ब) राज्य के कामकाज के लिए निदेशक सिद्धांत।

स) प्रत्येक नागरिक के नैतिक और नागरिक दायित्व। द) सरकारी अधिकारियों को उपलब्ध कानूनी विशेषाधिकार।

प्रश्न.2. भारतीय संविधान में कितने मौलिक कर्तव्य निहित हैं?

अ) 10 ब) 11

स) 12 द) 14

प्रश्न.3.भारतीय संविधान में किस संशोधन ने मौलिक कर्तव्यों की अवधारणा पेश की?

अ) 42वां संशोधन ब) 44वां संशोधन

स) 52वां संशोधन द) 56वां संशोधन

प्रश्न.4. भारतीय संविधान का कौन सा अनुच्छेद मौलिक कर्तव्यों से संबंधित है?

अ) अनुच्छेद 50 ब) अनुच्छेद 51ए

स) अनुच्छेद 45 द) अनुच्छेद 49

## 8.8 सारांश

मौलिक कर्तव्य भारतीय समाज के भीतर विभिन्न जातियों और पंथों के सदस्यों के बीच राष्ट्रीय एकता, एकता और सांस्कृतिक सद्भाव का नेतृत्व करते हैं। हालाँकि पूर्ववर्ती यूएसएसआर अपने संविधान में मौलिक कर्तव्यों को अपनाने वाला दुनिया का पहला देश था, लेकिन अब दुनिया के कम्युनिस्ट और गैर-कम्युनिस्ट दोनों देशों में मौलिक कर्तव्यों का प्रावधान है। कुछ देशों में मूल कर्तव्यों को न्यायोचित एवं बाध्यकारी बनाया गया है। कुछ देशों में गैर न्ययोचित एवं अबाध्यकारी बनाया गया है।

## 8.9 शब्दावली

**सामासिक संस्कृति** – ऐसी सांस्कृतिक पहचान जिसमें विविध संस्कृतियों का संगम हो और उनमें भेदरहित सहअस्तित्व हो।

**गैर-प्रवर्तनीय** – शाब्दिक अर्थ में इसका अर्थ है जो प्रवर्तन (लागू ) करने योग्य न हो। परन्तु भारतीय संविधान के सन्दर्भ में कोई ऐसा कानून या नियम जिसके पालन हेतु राज्य पर बाध्यकारी प्रभाव न हो, उसे गैर-प्रवर्तनीय की श्रेणी में रख सकते हैं। जो पूर्णतः राज्य विवेकाधीन हो।

**गैर-न्यायोचित** – कोई ऐसा वैध नियम या अनुबंध जिसे अदालती प्रक्रिया द्वारा बाध्यकारी न बनाया जाय।

## 8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न.1. स प्रश्न.2. ब प्रश्न.3. अ प्रश्न.4. ब

## 8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

"भारतीय संविधान: राष्ट्र की आधारशिला", ग्रानविले ऑस्टिन,ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; पहला संस्करण (27 अगस्त, 1999)

"मौलिक अधिकार और मौलिक कर्तव्य": पाठ और टिप्पणी",वी.आर. कृष्णा अय्यर , यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कंपनी प्रा. लिमिटेड

"भारत के संविधान का परिचय",डॉ. दुर्गा दास बसु ,प्रकाशक: लेक्सिसनेक्सिस इंडिया

## 8.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय राजव्यवस्था , एम लक्ष्मीकांत , 5वां संस्करण

राजनीति विज्ञान - समसामयिक विश्व राजनीति (कक्षा 12), प्रकाशक: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी)

## 8.13 निबंधात्मक प्रश्न

1) भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्यों के महत्व का वर्णन करें और वे किस प्रकार मौलिक अधिकारों के पूरक हैं ?

2) भारतीय संविधान से कोई दो मौलिक कर्तव्य चुनें और एक जिम्मेदार और सामंजस्यपूर्ण समाज को बढ़ावा देने में उनके महत्व को समझाएं।

3) 42वें संशोधन के माध्यम से संविधान में मौलिक कर्तव्यों को शामिल करने के पीछे के ऐतिहासिक संदर्भ और कारणों पर चर्चा करें।

4) कुछ आलोचकों का तर्क है कि मौलिक कर्तव्य केवल नैतिक उपदेश हैं और उनमें प्रवर्तनीयता का अभाव है। क्या आप इस दृष्टिकोण से सहमत हैं ? अपना तर्क प्रस्तुत करें।

# इकाई 9- भारतीय संविधान में राज्य के नीति निदेशक तत्व-

9.0- प्रस्तावना –

9.1 - उद्देश्य -

9.2- नीति निदेशक तत्वों का अर्थ व स्वरूप –

9.3– भारतीय संविधान में वर्णित नीति निदेशक तत्व

9.4– नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण-

9.5- नीति निदेशक तत्वों की विशेषताएँ/ महत्व –

9.6– नीति निदेशक तत्वों की आलोचना –

9.7- नीति निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन –

9.8– मौलिक अधिकार तथा नीति निदेशक तत्वों में अन्तर –

9.9– नीति निदेशक तत्वों का न्यायिक दृष्टिकोण –

9.10- नीति निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचार –

9.11- सारांश-

9.12- शब्दावली-

9.13- अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

9.14- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

9.15- सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामाग्री-

9.16- निबन्धात्मक प्रश्न-

"क्योंकि राज्य की नीति के निदेशक तत्व संविधान में शामिल है, इसलिए वे बहुमत दल के अस्थायी आदेश मात्र ही नहीं है वरन उनमे राष्ट्र की बुद्धिमत्ता स्वीकृति बोल रही है, जो संविधान सभा के माध्यम से व्यक्त हुई थी"-

उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश 'हीरालाल जे कानिया'

## 9.0 - प्रस्तावना –

भारतीय संविधान में नीति निदेशक तत्वों का उल्लेख आधुनिक युग की प्रवृति है जो लोकतंत्रात्मक भारत का शिलान्यास करते है। भारतीय संविधान के भाग – 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निदेशक तत्वों का वर्णन किया गया है, जो 1937 में निर्मित आयरलैंड के संविधान से लिए गये है। नीति निदेशक तत्व शासन व्यवस्था के आधार है जो प्रशासको के लिए आचार संहिता का कार्य करते है। राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उद्देश्य शान्तिपूर्ण तरीके से सामाजिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त कर सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना है, जिससे सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र तथा एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की जा सके। राज्य के नीति निदेशक तत्वों का महत्व इस बात का है कि ये नागरिको के प्रति राज्य के दायित्व के द्योतक/ प्रतीक है। यद्यपि ये तत्व वाद योग्य या न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किये जा सकते लेकिन फिर भी ये शासन के लिए आधारभूत सिद्धांत है तथा सरकार के तीनो अंगो – कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका ने इनकी महत्ता स्वीकार किया है।

## 9.1 उद्देश्य –

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

1- राज्य के नीति निदेशक तत्वों को भारतीय संविधान में सम्मिलित करने के मुख्य उद्देश्यों को समझ पायेंगे।

2- राज्य के नीति निदेशक तत्वों के संवैधानिक महत्व को समझ पायेंगे।

3- सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र को स्थापित करने में नीति निदेशक तत्वों की क्या भूमिका है, समझ पायेंगे।

**4-** आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्यों में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को समझ पायेंगे।

**5-** मूल अधिकार एवं नीति निदेशक तत्वों के मध्य आपसी सम्बन्धो एवं अन्तर को समझ पायेंगे।

**6-** नीति निदेशक तत्वों में निहित आदर्शो को समझ पायेंगे।

## 9.2 नीति निदेशक तत्वों का अर्थ व स्वरूप –

एक समय था जब राज्य का कर्तव्य केवल समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना और जनता के प्राण, स्वतंत्रता, और सम्पत्ति की सुरक्षा तक ही सीमित माना जाता था। परन्तु अब इस धारणा में परिवर्तन हो गया है या हो रहा है। आज एक लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा विद्यमान है, जिसका कार्य आम नागरिको के सुख एवं समृद्धि की अभिवृद्धि करना है। इस उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु ही संविधान निर्माताओ ने नीति निदेशक तत्वों में कुछ आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को निहित किया है, जिसका पालन करना राज्य के लिए आवश्यक है। राज्य का यह कर्तव्य है कि जनता के हित और आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना के लिए इनको यथाशक्ति कार्यान्वित करने का प्रयास करे, जिस से भारतीय संविधान की प्रस्तावना में उल्लेखित 'लोक कल्याणकारी राज्य' एवं 'समाजवादी समाज' की स्थापना का आदर्श प्राप्त किया जा सके।

नीति निदेशक तत्वों में वे आदर्श निहित है जिनको प्रत्येक सरकार अपने नीतियों के निर्धारण में सदैव ध्यान में रखेगी। इनमे वे आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक सिद्धांत मौजूद है जो भारत के विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल है। डॉ अम्बेडकर ने ठीक ही कहा है कि – "ये भारतीय संविधान की 'अनोखी विशेषताएँ' है। इनमे एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है"।

डॉ अम्बेडकर ने संविधान निर्मात्री सभा में नीति निदेशक तत्वों में अन्तर्निहित उद्देश्यों के बारे में स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि ".....हमारा संविधान संसदीय प्रजातन्त्र की स्थापना करता है। संसदीय प्रजातन्त्र से तात्पर्य है- एक व्यक्ति एक वोट। राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना का उद्देश्य यह है कि हम कुछ निश्चित लोगो को यह अवसर न दे कि वे निरंकुशवाद को कायम रख सके। जब हमने राजनैतिक लोकतन्त्र की स्थापना की है, तो हमारी यह भी इच्छा है कि आर्थिक लोकतन्त्र का आदर्श भी स्थापित करे। प्रश्न यह है कि क्या हमारे पास कोई निश्चित तरीका है जिससे हम आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना कर सके? विभिन्न ऐसे तरीके

जिनमे लोगो का विश्वास है की आर्थिक लोकतन्त्र लाया जा सकता है। बहुत से लोग है जो व्यक्तिगत उत्कर्ष को सबसे अच्छा आर्थिक लोकतन्त्र समझते है, और बहुत से लोग समाजवादी समाज की स्थापना को सबसे अच्छा आर्थिक लोकतन्त्र मानते है, और बहुत से लोग कम्युनिज्म की स्थापना को सबसे अच्छा समाजवाद का रूप मानते है। इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि आर्थिक लोकतन्त्र को लाने के बहुत से तरीके है, हमने जो भाषा प्रयुक्त की है, उसमे जानबूझ कर नीति निदेशक तत्वों में ऐसी चीज़ रखी है जो निश्चित या अनम्य नहीं है। हमने इसीलिए विविध तरीको से आर्थिक लोकतन्त्र के आदर्शो तक पहुचने के लिए चिन्तनशील लोगो के लिए पर्याप्त स्थान छोड़ा है। इस संविधान की रचना में हमारे वस्तुतः दो उद्देश्य है –1- राजनैतिक लोकतन्त्र का स्वरूप निर्धारण करना 2- यह स्थापित करना कि हमारा आदर्श आर्थिक लोकतन्त्र है और इसका भी विधान करना कि प्रत्येक सरकार, जो कोई भी सत्ता में हो, आर्थिक लोकतन्त्र लाने का प्रयास करेगी।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आधुनिक समय में नीति निदेशक तत्वों का मुख्य उद्देश्य विधान मंडल और कार्यपालिका के समक्ष उपलब्धि का एक मानदण्ड रखना है, जिस पर उसकी सफलता और असफलता की जाँच की जा सके। नीति निदेशक तत्व आर्थिक और सामाजिक आदर्श के किसी निश्चित रूप का उपबन्ध नहीं करते, बल्कि वे केवल उन लक्ष्यों की स्थापना करते है जो समय- समय पर लागू किये गये रीतियों द्वारा विभिन्न तरीको से प्राप्त किये जा सकते है।

## 9.3 भारतीय संविधान में वर्णित नीति निदेशक तत्व –

भारतीय संविधान के भाग – 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निदेशक तत्वों का वर्णन किया गया है। जिनका विवरण निम्नलिखित है –

अनुच्छेद 36 – राज्य की परिभाषा

अनुच्छेद 37 – इस भाग में समाहित सिद्धान्तों को लागू होना

अनुच्छेद 38 – राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनायेगा

अनुच्छेद 39 – राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व

अनुच्छेद 39 (A) – समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता

अनुच्छेद 40 – ग्राम पंचायतो का संगठन

अनुच्छेद 41 – कुछ दशाओ में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार

अनुच्छेद 42 – काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओ का तथा प्रसूति सहायता का उपबन्ध

अनुच्छेद 43 – कर्मकारो के लिए निर्वाह मजदूरी आदि

अनुच्छेद 43 (A) – उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मकारो की सहभागिता

अनुच्छेद 43 (B) – सहकारी समितियों को प्रोत्साहन

अनुच्छेद 44 – नागरिको के लिए समान नागरिक संहिता

अनुच्छेद 45 – प्रारम्भिक शैशवावस्था की देख-रेख एवं छः वर्ष से कम आयु के बच्चो की शिक्षा का प्रावधान

अनुच्छेद 46 – अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियो और अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितो की अभिवृद्धि

अनुच्छेद 47 – पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य

अनुच्छेद 48 – कृषि और पशुपालन का संगठन

अनुच्छेद 48 (A ) – पर्यावरण का संरक्षण एवं संवर्द्धन और वन तथा वन्य जीवो की रक्षा

अनुच्छेद 49 – राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओ का संरक्षण

अनुच्छेद 50 – कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथककरण

अनुच्छेद 51 – अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को प्रोत्साहन

## 9.4 नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण –

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निदेशक तत्वों का वर्णन किया गया है क्योंकि इन निदेशक तत्वों को संविधान में किसी युक्तियुक्त योजना के अनुसार नहीं गिनाया गया है, अत: उनका वर्गीकरण करना कठिन है। अध्ययन की सुविधा के लिए इनको निम्नलिखित वर्गो में बाँटा जा सकता है-

1- समाजवादी सिद्धांत-

2- गाँधीवादी सिद्धांत –

3- उदारवादी सिद्धांत/ उदार बौद्धिक सिद्धांत -

**9.4.1- समाजवादी सिद्धांत –**

नीति निदेशक तत्वों का उद्धेश्य एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। इनमे से कुछ सिद्धांत समाजवादी विचारो से प्रेरित है, जो निम्नलिखित है –

1- अनुच्छेद 38 में कहा गया है की राज्य लोक कल्याण को बढावा देने के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय द्वारा सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करेगा और आय, प्रतिष्ठा, सुविधाओ और अवसरों की असमानता को समाप्त करेगा।

2- अनुच्छेद 39 में कहा गया है कि राज्य ऐसी नीति का निर्धारण करेगा, जिसमे –

i- सभी नागरिको को समान रूप से जीवन–यापन करने के साधन प्राप्त हो सके।

ii- समाज के भौतिक साधनों का स्वामित्व व नियंत्रण समाज के कल्याण के अनुरूप हो।

iii- धन के केन्द्रीकरण को रोका जा सके।

iv- पुरुषों व महिलाओ को समान कार्य के लिए समान वेतन हो।

v- ऐसी औद्योगिक नीति व हालात बनाये जाये, जिनमे शोषण न हो, महिलाओ और बच्चों की सुकुमारावस्था का दुरूपयोग न हो। उम्र के प्रतिकूल कार्य न लिया जाये।

42वे संविधान संशोधन(1976) के द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 39(A) जोड़ा गया, इसके अनुसार यह व्यवस्था की गयी कि राज्य यह देखेगा कि कानूनी व्यवस्था समान अवसर के आधार पर न्याय को प्रोत्साहित करे। तथा राज्य कमज़ोर वर्गों के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था करेगा।

3- अनुच्छेद 41 में कहा गया है कि एक नागरिक को काम पाने और शिक्षा प्राप्त करने में राज्य द्वारा उचित संरक्षण दिया जाना चाहिए।

4- अनुच्छेद 42 में कहा गया है कि राज्य महिलाओं के लिए प्रसूति तथा मजदूरो के लिए काम की उचित परिस्थिति के निर्माण के लिए प्रयत्न करे।

5- अनुच्छेद 43 में उल्लेख किया गया है कि राज्य क़ानून द्वारा ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करे जिनसे मजदूरों का शोषण न हो, उनका जीवन स्तर ऊँचा उठे तथा सामाजिक अवसर प्राप्त हो।

6- 42वे संविधान संशोधन 1976 के द्वारा संविधान में एक अनुच्छेद 43(A) जोड़ा गया, जिसके अनुसार राज्य औद्योगिक संस्थानों के प्रबन्ध में कर्मचारियों को भागीदार बनाने के लिए कदम उठायेगा।

7- अनुच्छेद 46 में कहा गया है कि राज्य पिछड़े वर्ग (अनुसूचित जाति एवं जनजाति) की शिक्षा एवं अर्थ सम्बन्धी सहायता करे।

### 9.4.2 गाँधीवादी सिद्धांत-

भारतीय संविधान महात्मा गाँधी जी के दर्शन से प्रेरित है, ये निदेशक तत्व गाँधी जी की विचारधारा पर आधारित है। गांधीजी के सपनो को साकार करने के लिए उनके कुछ विचारो को नीति निदेशक तत्वों में शामिल किया गया है। ये तत्व राज्य से अपेक्षा करते है कि –

1- राज्य ग्राम पंचायतो का संगठन करेगा और उन्हें स्वायत्त शासन की इकाई बनाने के लिए अधिक शक्तियाँ प्रदान करेगा (अनुच्छेद 40)।

2- राज्य कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करेगा (अनुच्छेद 43)

3- राज्य सहकारी समितियों के गठन,स्वायत्त संचालन एवं लोकतान्त्रिक नियन्त्रण और व्यवसायिक प्रबन्धन को बढ़ावा देगा (अनुच्छेद 43A)

4- राज्य अनुसूचित जाति और जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गो को शिक्षा एवं आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान करेगा (अनुच्छेद 46)

5- राज्य मादक द्रव्यों के प्रयोग को निषिद्ध करेगा (अनुच्छेद 47)

6- राज्य गौरक्षा एवं कृषि के वैज्ञानिकीकरण का प्रयास करेगा (अनुच्छेद 48)

7- राज्य प्राकृतिक वातावरण को सुधारने तथा वन्य जीवन और जंगलो को सुरक्षित करने का प्रयास करेगा (अनुच्छेद 48A)

### 9.4.3 उदारवादी सिद्धांत/ उदार बौद्धिक सिद्धांत –

ये तत्व उदारवादी विचारधारा से सम्बन्धित है, जो निम्नलिखित है –

1- अनुच्छेद 44 के अनुसार राज्य समस्त भारत में समान व्यवहार संहिता (Uniform Civil Code) बनाने का प्रयत्न करेगा।

2- अनुच्छेद 49 के अनुसार राज्य का कर्तव्य होगा कि वह ऐतिहासिक व कलात्मक महत्व के प्रत्येक स्मारक व वस्तु को, जिसे संसद राष्ट्रीय महत्व का घोषित करे उसे दूषित होने, स्थानान्तरित किये जाने अन्यथा बाहर जाने से रोके व उनकी रक्षा करे।

3- अनुच्छेद 50 के अनुसार राज्य कार्यपालिका को न्यायपालिका से पृथक करने का प्रयत्नं करेगा।

4- अनुच्छेद 51 में विदेश नीति के सम्बन्ध में कहा गया है कि राज्य – अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए, राज्यों के मध्य सम्मानपूर्ण सम्बन्धो और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने के लिए प्रयत्नशील होगा।

## 9.5 नीति निदेशक तत्वों की विशेषताएँ / महत्व –

अनेक आलोचनाओ के वावजूद संविधान से जुडाव के सन्दर्भ में नीति निदेशक तत्व आवश्यक है। संविधान में उल्लेखित है कि ये (नीति निदेशक तत्व) राष्ट्र के शासन हेतु मूलभूत है। प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ एल। एम्। सिंघवी के अनुसार, 'निदेशक तत्व संविधान को जीवन देने वाली व्यवस्थाए है संविधान के आवरण और सामाजिक न्याय में इसका दर्शन दिया है'। डॉ अम्बेडकर ने भी इन तत्वों की विशेषताओ की ओर इंगित करते हुए कहा है कि ' निदेशक तत्वों का बहुत अधिक मूल्य है, ये भारतीय राजव्यवस्था के लक्ष्य 'आर्थिक लोकतन्त्र' को निर्धारित करते है जिस से की राजनीतिक लोकतन्त्र प्रकट होता है।'

नीति निदेशक तत्वों की उपयोगिता और सांविधानिक महत्ता निर्विवाद है जिनके लिए निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते है –

1- **ये सत्तारुढ दल के लिए आचार संहिता है** – ये सिद्धांत इस बात का विश्वास दिलाते है कि देश में कोई भी राजनीतिक दल सत्ता में आने पर इन तत्वों के अनुसार ही अपनी नीति बनायेगा। भले ही ये तत्व न्यायालय द्वारा लागू नहीं किये जा सकते, फिर भी कोई भी उत्तरदायी सरकार इनकी अवेहलना नहीं कर सकती क्योंकि इनके पीछे जनमत की शक्ति होती है। इस सम्बन्ध में संविधान सभा के सदस्य अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान सभा में कहा था कि –" कोई भी

लोकप्रिय मंत्रिमंडल संविधान के चतुर्थ भाग के उपबन्धों के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता है"

2- **ये वास्तविक लोकतन्त्र का विश्वास दिलाते है** – नीति निदेशक तत्व भारत में वास्तविक लोकतन्त्र का विश्वास दिलाते है क्योंकि आर्थिक लोकतन्त्र के अभाव में राजनीतिक लोकतन्त्र अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकता। इन तत्वों का का उद्देश्य भारत में आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है जिस से कि राजनीतिक लोकतन्त्र वास्तविक लोकतन्त्र बन सके।

3- **ये कल्याणकारी राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत करते है** – डॉ अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि 'संविधान का उद्देश्य केवल राजनीतिक लोकतन्त्र की व्यवस्था करना ही नहीं बल्कि ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है जिसमे आर्थिक तथा सामाजिक लोकतन्त्र का भी समावेश हो'। राज्य के नीति निदेशक तत्वों को प्रभावी रूप से लागू किया जाये तो ये इस आदर्श की पूर्ति कर सकते है।

4- **ये सरकार की सफलता के मापदण्ड है** – नीति निदेशक तत्वों के माध्यम से जनता यह जाँच कर सकती है कि सरकार ने अपने नीतियों को रूपरेखा देने में किस सीमा तक इन तत्वों को महत्व दिया है।

5- **ये उपयोगी नैतिक आदेश है** – यदि नीति निदेशक तत्वों को केवल नैतिक आदेश ही मान लिया जाये, तो भी इनका अत्यधिक महत्व है। ब्रिटेन में मैग्नाकार्टा, फ्रांस में मानवीय तथा नागरिक अधिकारों का घोषणा पत्र तथा अमरीकी संविधान की प्रस्तावना को कोई कानूनी अधिकार प्राप्त न होने पर भी इन देशो के इतिहास पर इनका प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार यह आशा की जाती है कि ये तत्व भी भारत में अपना प्रभाव दिखायेंगे।

6- **संविधान की व्याख्या में सहायक** – राज्य के नीति निदेशक तत्व भारतीय न्यायालयों के मार्गदर्शक है। न्यायालयों ने भी बहुत से मुकदमो का फैसला करते समय इन्हें उचित महत्व दिया है जिससे इस बात को बल मिलता है कि ये निश्चित ही भारतीय शासन के आधार है। एम् सी सीतलवाड़ ने इस सम्बन्ध में कहा है कि

– 'राजनीति के इन मूलभूत सिद्धांतो का वैधानिक प्रभाव न होते हुए भी इनके द्वारा न्यायालयों के लिए उपयोगी प्रकाश – स्तम्भ का कार्य किया जाता है'।

## नीति निदेशक तत्वों की आलोचना –

जिस समय संविधान का निर्माण हो रहा था उस समय भी संविधान सभा में नीति निदेशक तत्वों के उपबंधो की बहुत आलोचना हुई थी। संविधान के स्वीकृत व लागू हो जाने के उपरान्त भी अनेक आलोचकों द्वारा इन तत्वों की आलोचना की गयी। आलोचकों द्वारा नीति निदेशक तत्वों की आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित है-

1- **वैधानिक शक्ति का अभाव** – संविधान ने एक ओर नीति निदेशक तत्वों को देश के शासन में मूलभूत माना है किन्तु साथ ही वे वैधानिक शक्ति प्राप्त या वाद योग्य नहीं है, अर्थात् न्यायालय उपर्युक्त तत्वों को क्रियान्वित नहीं करा सकते। अत: आलोचकों की राय में ये तत्व 'शुभ इच्छाए', 'नैतिक आदेश' या ऐसी राजनीतिक घोषणाओ के समान है जिनका कोई संवैधानिक महत्व नहीं है।

2- **अस्पष्ट तथा तार्किक रूप से संगृहीत** – नीति निदेशक तत्व किसी निश्चित दर्शन पर आधारित नहीं है। वे अस्पष्ट है, जिनमे क्रमबद्धता का अभाव है और एक ही बात को बार – बार दोहराया गया है। उदाहरण के लिए नीति निदेशक तत्वों में पुराने स्मारकों की रक्षा जैसे महत्वहीन प्रश्न अपेक्षाकृत अत्यन्त महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों के साथ मिला दिए गये है।

3- **संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न होने की आशंका** – संवैधानिक विधिवेत्ताओ ने आशंका व्यक्त की है कि ये तत्व संवैधानिक द्वन्द और गतिरोध के कारण भी बन सकते है। संविधान सभा में 'संथानम' ने कहा था कि – "नीति निदेशक तत्वों के कारण राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री अथवा राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के बीच मतभेद उत्पन्न हो सकता है यदि शासन निदेशक तत्वों के विरूद्ध व्यवस्थापिका से कोई विधेयक स्वीकृत करा लेता है तो राष्ट्रपति या राज्यपाल इस आधार पर विधेयक पर निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है कि वह शासन के मूलभूत सिद्धांत निदेशक तत्वों के विरूद्ध है। इस प्रकार की घटनाएँ कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान और वास्तविक प्रधान के बीच मतभेदों को जन्म देगी जिससे संसदीय प्रजातन्त्र को एक गम्भीर आघात पहुँच सकता है।"

4- **अव्यावहारिक** – आलोचकों का मानना है कि कुछ नीति निदेशक तत्व अव्यावहारिक भी है। उदाहरण के लिए मद्य निषेध से सम्बन्धित उपबन्धों से राष्ट्रीय कोष पर भार पड़ेगा तथा नैतिकता थोपी भी नहीं जा सकती। मद्य निषेध शराब के अवैध व्यापार को बढायेगा।

## 9.7 - नीति निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन –

संविधान लागू होने के पश्चात् केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने अपने – अपने साधनों के अनुसार इन निर्देशों को लागू करने का भरसक प्रयास किया है और कर रही है। नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए अनेक कार्यक्रम एवं विधियों को बनाया गया है जिनका उल्लेख निम्नलिखित है –

1- संविधान लागू होने के बाद सरकार ने 1950 में योजना आयोग की स्थापना की ताकि देश का विकास नियोजित तरीके से हो सके। साथ ही सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओ के आधार पर कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, नौकरी व कार्य के साधनों में वृद्धि तथा राष्ट्रीय आय एवं लोगो के रहन – सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयास किये है।

2- लगभग सभी राज्यों में सरकार द्वारा भू – सुधार कानून पारित किए गए है जिससे विचौलियो, (जमींदार, जागीरदार, ईनामदार आदि )को समाप्त किया गया है, अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण किया गया, सहकारी कृषि को प्रोत्साहित किया गया एवं भूमि सीमांकन व्यवस्था को लागू किया गया।

3- न्यूनतम मजदूरी (1948), बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम (1986), कारखाना अधिनियम (1948), ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम (1970) आदि को श्रमिक वर्ग के हितो के संरक्षण के लिए लागू किया गया है। वर्ष 2006 में सरकार ने बाल श्रम पर प्रतिबन्ध लगाया। 2016 में बाल श्रम निषेध एवं विनियमन अधिनियम (1986) का नाम बदलकर बाल एवं किशोर श्रम निषेध एवं विनियमन अधिनियम कर दिया गया।

4- प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम(1961) और सामान पारिश्रमिक अधिनियम (1976) को महिला कर्मचारियों के हितो की रक्षा के लिए बनाया गया है।

5- विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम(1987) का राष्ट्रीय स्तर पर गठन किया गया ताकि गरीबो को निःशुल्क एवं उचित कानूनी सहायता प्राप्त हो सके। इसके अलावा समान न्याय को बढ़ावा देने के लिए लोक अदालतों का गठन किया गया।

6- सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952), पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1960), न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (1974), एकीकृत ग्रामीण विकास योजना (1999), राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी योजना (2006) आदि को मानक जीवन जीने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया है।

7- वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम (1972), एवं वन (संरक्षण) अधिनियम (1980) को वन्य जीवों एवं वनों के लिए सुरक्षा कवच के रूप में प्रभावी बनाया गया।

8- 73वे संशोधन अधिनियम (1992) को पंचायती राज संस्थानों को संवैधानिक दर्ज़ा देने के लिए प्रभावी बनाया गया जिस से त्रि स्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था को लागू किया जा सके।

9- अश्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 को सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1976 नया नाम दिया गया और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की सुरक्षा में प्रभावी बनाया गया, ताकि उन्हें शोषण से मुक्ति और सामाजिक न्याय मिले।

10- आर्थिक समानता स्थापित करने के लिए तथा धन के केन्द्रीकरण को रोकने के लिए सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के बढ़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया।

यद्यपि सरकारों ने इन तत्वों को लागू करने का प्रयास किया गया है परन्तु निस्सन्देह यह प्रयास अभी भी पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जा सका है। केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उपरोक्त अनेक कदम उठाए जाने के बावजूद निदेशक तत्वों को पूर्ण एवं प्रभावी लागू नहीं किया जा सका जिसके अनेक कारण है , जिनमे अपर्याप्त वित्तीय संसाधन, प्रतिकूल सामाजिक- आर्थिक परिस्थिति, जनसंख्या विस्फोट, केन्द्र राज्य तनावपूर्ण सम्बन्ध रहे है।

## 9.8 - मौलिक अधिकार तथा नीति निदेशक तत्वों में अन्तर –

नीति निदेशक तत्व और मूल अधिकार दोनों ही हमारे संविधान की अन्तरात्मा है, जिनका लक्ष्य देश में सच्चे अर्थो में लोकतान्त्रिक गणराज्य की भावना को साकार करना है। दोनों ही भारतीय नागरिको की स्वतन्त्रता के प्रतीक है, यद्यपि नीति निदेशक तत्व और मौलिक

अधिकार दोनों का सम्बन्ध नागरिक के विकास से है, इसलिए दोनों एक – दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। फिर भी दोनों में निम्नलिखित अन्तर है –

1- मूल अधिकार नकारात्मक है, क्योंकि ये राज्य पर कुछ प्रतिबन्ध लगाते है जबकि निर्देशक तत्व सकारात्मक है, क्योंकि ये राज्य को किन्ही निश्चित कार्यो को करने का आदेश देते है।

2- मूल अधिकार वाद योग्य है, जबकि नीति निदेशक तत्व वाद योग्य नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 37 स्पष्ट रूप से कहता है कि निर्देशक तत्वों को किसी न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकेगा।

3- मूल अधिकारों का विषय व्यक्ति है, जबकि निर्देशक तत्व राज्य के लिए है।

4- मूल अधिकार नागरिको को संविधान द्वारा प्रत्यक्ष रूप से दिए गये है जबकि निदेशक तत्वों का उपयोग नागरिक तभी कर सकते है जब राज्य इन्हें विधि द्वारा कार्यान्वित करे।

5- निदेशक तत्वों का क्षेत्र मूल अधिकारों के क्षेत्र से कही अधिक व्यापक है। मूल अधिकारों का क्षेत्र भारत राज्य की सीमाओं के अन्दर है जबकि निदेशक तत्वों में अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के सिद्धान्त के साथ विश्व बन्धुत्व और विश्व शान्ति का सन्देश भी अन्तर्निहित है।

6- संवैधानिक दृष्टि से मूल अधिकार नीति निदेशक तत्वों से श्रेष्ठ है। चेन्नई बनाम चम्पाकम दोराइराजन विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि राज्य के नीति निदेशक तत्व जिन्हें अनुच्छेद 37 में न्यायालय द्वारा प्रवर्तन योग्य नहीं माना है, मौलिक अधिकारों से श्रेष्ठ नहीं है, हमारे विचार में नीति निदेशक तत्वों को मौलिक अधिकारों के अनुरूप होकर चलना होगा। बिहार राज्य बनाम कुरैशी विवाद में भी उच्चतम न्यायालय का यही मत था।

7- मूल अधिकारों का उद्देश्य देश में लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना है जबकि नीति निदेशक तत्वों का उद्देश्य देश में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है।

8- मूल अधिकार व्यक्तिगत कल्याण को प्रोत्साहन देते है, इस प्रकार ये वैयक्तिक है जबकि नीति निदेशक तत्व समुदाय के कल्याण को प्रोत्साहित करते है, इस तरह ये समाजवादी है।

## 9.9 नीति निदेशक तत्वों का न्यायिक दृष्टिकोण –

संवैधानिक दृष्टि से भले ही नीति निदेशक तत्व वाद योग्य नहीं है लेकिन 1971 में संविधान के 25वें संशोधन होने के पश्चात नीति निदेशक तत्वों के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण को 3 वर्गो में बाँटा जा सकता है –

1- मूल अधिकारों को निदेशक तत्वों से उच्च मानने सम्बन्धी न्यायिक निर्णय –
2- मूल अधिकारों तथा नीति निदेशक तत्वों को एक दूसरे के पूरक मानने सम्बन्धी न्यायिक निर्णय-
3- वे न्यायिक निर्णय, जिनमे मूल अधिकारों पर प्रतिबन्धो को स्पष्ट करने के लिए नीति निदेशक तत्वों का सहारा लिया गया-

### 9.9.1 मूल अधिकारों को निदेशक तत्वों से उच्च मानने सम्बन्धी न्यायिक निर्णय –

न्यायाधीशो का तर्क यह रहा है कि मूल अधिकार वाद योग्य है जबकि नीति निदेशक तत्व वाद योग्य नहीं है अत: ये कम महत्वपूर्ण है, मूल अधिकारों के अधीन है और इन्हें अधीन रहना भी चाहिए। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित है –

1- चम्पाकम दोराइराजन बनाम मद्रास राज्य पहला मामला था जिसमे संविधान के लागू होने के तुरन्त बाद मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था दी गई। सर्वोच्च न्यायालय ने इस केस में मद्रास राज्य के आदेश को अनुच्छेद 29 (2) के खिलाफ होने के कारण अवैध घोषित कर दिया। अपने निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि निदेशक तत्वों को मूल अधिकारों के अनुकूल होना चाहिए और उसके सहायक के रूप में रहना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एस आर दास ने कहा की –'राज्य के नीति निदेशक तत्व जिन्हें अनुच्छेद 37 द्वारा न्यायालयों में वाद योग्य नहीं माना गया है, संविधान के तीसरे भाग में दिए गये उपबन्धों का अतिक्रमण नहीं कर सकते।

2- वी। सी। आर श्रीनिवास बनाम मद्रास राज्य के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में उसी प्रकार के विचार प्रकट किये जो चम्पाकम मामले में दिए थे।

3- गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार की यह दलील कि वह बदलती हुई जन आकांक्षाओ के अनुसार निदेशक तत्वों को लागू कर सकती है,को अस्वीकार करते हुए निर्णय दिया कि –'निदेशक तत्वों को तीसरे भाग द्वारा व्यवस्थित स्वयं नियमित करने वाले यन्त्र के भीतर ही लागू किया जा सकता है।'

4- मो0 हमीद कुरैशी और अन्य बनाम बिहार राज्य में पशु रक्षण और सुधार अधिनियम, 1955 के कुछ उपबन्धों की विधि मान्यता पर विचार करते हुए न्यायमूर्ति एस। आर। दास ने चम्पाकम दोराइराजन मामले में की गयी युक्ति का आश्रय लिया कि संविधान के चौथे भाग में निर्धारित राज्य के नीति निदेशक तत्वों को संविधान के तीसरे भाग में दिए गये मूल अधिकारों के अनुकूल और उसके अधीन रहना होता है।

### 9.9.2- मूल अधिकारों तथा नीति निदेशक तत्वों को एक दूसरे के पूरक मानने सम्बन्धी न्यायिक निर्णय-

कुछ मामलो में न्यायालयो द्वारा निर्णय इस प्रकार के दिए गये जिनमे मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों को एक-दूसरे का पूरक माना गया है। जिसके प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित है –

1- बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 39 पर बल देते हुए निर्णय दिया कि जमींदारी उन्मूलन 'लोक प्रयोजन' के लिए पारित किये गये है अत: संवैधानिक है। इस सम्बन्ध में न्यायमूर्ति महाजन ने कहा था कि –"संविधान के चौथे भाग में दिए गये उपबन्ध तीसरे भाग में दिए गये उपबन्धों का प्रतिपूरण करते है और ये दोनों भाग मिलकर एक कल्याणकारी लोकतन्त्रात्मक राज्य के निर्माण के लिए एक योजना प्रस्तुत करते है।"

2- सज्जन सिंह बनाम स्टेट ऑफ़ राजस्थान के मामले में न्यायाधीश मधोलकर ने कहा कि निदेशक तत्व देश के शासन के आधारभूत सिद्धांत है और संविधान के भाग 3 के उपबन्ध इन सिद्धांतों के साथ ही समझे जाने चाहिये।

**9.9.3- वे न्यायिक निर्णय, जिनमे मूल अधिकारों पर प्रतिबन्धो को स्पष्ट करने के लिए नीति निदेशक तत्वों का सहारा लिया गया-**

इस प्रकार के निर्णयों में न्यायालयों ने मूल अधिकारों की तुलना में निदेशक तत्वों को अधिक महत्व दिया है जिसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित है –

1- एस। नारायण पल्लवी बनाम दि स्टेट ऑफ़ ट्रावनकोर कोचीन के न्यायिक निर्णय में स्वीकार किया कि मद्यनिषेध एक निदेशक सिद्धांत है जो अनुच्छेद 19(1) (छ) पर युक्तियुक्त निर्बन्धन अर्थात् प्रतिबन्ध लगाता है।

2- जुगलकिशोर बनाम लेबर कमिश्नर के मुकदमे में भी अनुच्छेद 19(1) (छ) पर लगाये जाने वाले युक्तियुक्त निर्बंधनो का प्रश्न था। न्यायिक निर्णय में स्वीकार किया गया कि जनहित में इस अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाए जा सकते है। न्यायालय ने प्रतिबन्धो का ज़िक्र करते हुए अनुच्छेद 41,43,तथा 46 में दिए गये निदेशक तत्वों का उल्लेख किया।

## 9.10- नीति निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्धानों के विचार –

नीति निदेशक तत्व वे संवैधानिक लक्ष्य है, जिन्हें हमे प्राप्त करना है। नीति निदेशक तत्व व्यापक है।इन विभिन्न निदेशक तत्वों पर दृष्टिपात करे तो पाते है कि ये राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक नीति से सम्बन्धित है। नीति निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में विभिन्न विचारको द्वारा अपने-अपने विचार व्यक्त किये गये है जो निम्नलिखित है-

1- आइवर जैनिग्स ने नीति निदेशक तत्वों को "पुण्यात्मा, नैतिक आकांक्षा, फेबियन समाजवाद से प्रेरित" आदि संज्ञाए दी है।

2- जवाहरलाल नेहरु के शब्दों में, "नीति निदेशक तत्व समाज के समाजवादी ढांचे की स्थापना करते है"।

3- के सी व्हीयर ने अपनी पुस्तक 'Modern Constitution' में नीति निदेशक तत्वों के बारे में कहा है कि " नीति निदेशक तत्व संसद एवं न्यायपालिका में संघर्ष को बढ़ावा देते है"

4- आस्टिन अपनी पुस्तक 'The Indian Constitution' में लिखते है कि "नीति निदेशक तत्व सामाजिक क्रान्ति को स्थापित करते है या बढ़ावा देते है"

5- के एम् पणिक्कर के शब्दों में "नीति निदेशक तत्व आर्थिक क्षेत्र में समाजवाद की स्थापना करते है"

6- डॉ अम्बेडकर के शब्दों में –"नीति निदेशक तत्व आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करते है"

7- प्रो0 के टी शाह कहते है कि –"यह एक ऐसा चैक है जिसका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया है"

8- नीति निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में पायली लिखते है कि "नीति निदेशक तत्व नागरिको के प्रति राज्य का सकारात्मक दायित्व है"

इनके अतिरिक्त मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980) में 'मौलिक अधिकार और नीति निदेशक तत्वों के बीच सन्तुलन और समन्वय' को संविधान के आधारभूत ढाँचे का एक भाग माना है अर्थात् विधायिका या कार्यपालिका इन दोनों के मध्य सन्तुलन व समन्वय को सीमित या नष्ट नहीं कर सकती।

**अभ्यास प्रश्न –**

1- निम्न में से कौन सा नीति निदेशक तत्व है –

A- प्रेस की स्वतंत्रता B- धर्म की स्वतंत्रता

C – कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन D – कानून के समक्ष समानता

2- किस संविधान संशोधन द्वारा राज्य के नीति निदेशक तत्वों को मौलिक अधिकारों पर प्राथमिकता दी गयी –

A – 24 वाँ संशोधन B- 26 वाँ संशोधन
C – 42 वाँ संशोधन D - 44 वाँ संशोधन

3- नीति निदेशक तत्वों का वर्णन है –

A – संविधान के भाग III में B - संविधान के भाग IV में
C - संविधान के भाग VI में D- संविधान के भाग VII में

4- किसने नीति निदेशक तत्वों को 'नव वर्ष के प्रथम दिन पास किये गये शुभकामना प्रस्ताव' कहा-

A – प्रो के टी शाह B- प्रो के सी व्हीयर
C – प्रो आर एन राघवचारी D – नासिरुद्दीन

## 9.11- सारांश –

राज्य के नीति निदेशक तत्व भारतीय संविधान की एक अनोखी विशेषता है। इनका वर्णन संविधान के भाग 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक किया गया है।इनका मूल लक्ष्य आर्थिक व सामाजिक लोकतन्त्र स्थापित करना है। इन नीति निदेशक तत्वों में वे आदर्श निहित है जिनको प्रत्येक सरकार अपनी नीतियों के निर्धारण और योजनाओं के बनाने में सदैव ध्यान में रखेगी। इनमे वे आर्थिक, सामाजिक, और प्रशासनिक तत्व अन्तर्निहित है जो भारत की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल है।डॉ अम्बेडकर ने ठीक ही कहा था कि " ये (नीति निदेशक तत्व) भारतीय संविधान की अनोखी विशेषताए है"।

नीति निदेशक तत्व राज्य की कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के समक्ष आचार संहिता के रूप में है। देश की मौलिक अधिकार परामर्शदात्री समिति ने यह स्वीकारा था कि इन्हें प्रशासन के मूलभूत सिद्धांत माना जाये। प्रत्येक सरकार का यह कर्तव्य होगा कि इन्हें क्रियान्वित करे।

## 9.12- शब्दावली-

लोक कल्याणकारी राज्य – ऐसा राज्य जो अपने नागरिको को मूलभूत/ न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान करना अपना अनिवार्य कार्य समझता है।

संविधान – कानूनों का संग्रह जिस से किसी देश का शासन सुचारू रूप से संचालित होता है।

समान नागरिक संहिता – सामाजिक मामलो से सम्बन्धित कानून जो सभी धर्म के व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होता है।

वैधानिक शक्ति – कानूनी तरीके से प्राप्त शक्ति

समाजवाद- एक आर्थिक व्यवस्था जिसमे सम्पत्ति का समान वितरण हो।

## अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1-C, 2- C, 3- B, 4- D

## 9.14 –सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1- बसु, दुर्गादास 2009, भारत का संविधान, LexisNexis Butterworths Wadhwa Publication Nagpur।

2-अरोड़ा, एन दी , राजनीति विज्ञान, Mc Graw Hill Publication।

3-भारत का संविधान, Law Litreture Publication

4-त्रिवेदी, आर एन, भारतीय संविधान, विश्वभारती पब्लिकेशन दिल्ली।

5-अग्रवाल, प्रमोद कुमार,भारत का संविधान, ज्ञान गंगा प्रकाशन दिल्ली।

6-सिंहल, एस सी, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारत का संविधान, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर आगरा।

7-फड़िया, बी एल, भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

8-कश्यप सुभाष, हमारा संविधान, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत।

9-पाण्डेय, जयनारायण, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेंसी।

## 9.15-सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री –

6- त्रिवेदी, आर एन, भारतीय संविधान, विश्वभारती पब्लिकेशन दिल्ली।

7- अग्रवाल, प्रमोद कुमार,भारत का संविधान, ज्ञान गंगा प्रकाशन दिल्ली।

8- फड़िया, बी एल, भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

9- अरोड़ा, एन दी , राजनीति विज्ञान, Mc Graw Hill Publication।

## 9.16- निबन्धात्मक प्रश्न –

**1-** भारतीय संविधान में वर्णित राज्य के नीति निदेशक तत्वों को बताइए।

**2-** राज्य के नीति निदेशक तत्वों व मौलिक अधिकारों में अन्तर बताइए।

**3-** राज्य के नीति निदेशक तत्वों की प्रमुख रूप से किन आधारों पर आलोचना की जाती है? उनका संवैधानिक महत्व क्या है।

**4-** राज्य की नीति के कुछ महत्वपूर्ण निदेशक तत्वों का वर्णन कीजिए। इन तत्वों को किस सीमा तक क्रियान्वित किया गया है।

**5-** 'भारतीय संविधान का उद्देश्य वास्तव में एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है'। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

# इकाई 10- भारतीय संविधान में लोकतंत्र

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 लोकतंत्र की अवधारणा

10.3 भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति

10.4 भारतीय संविधान में लोकतंत्र की विशेषताएं

10.5 भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्न उत्तर

10.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 10.0 प्रस्तावना

वर्तमान समय में लोकतंत्र शासन की सबसे उत्तम व्यवस्था मानी जाती है।भारत में लोकतंत्र का इतिहास बहुत पुराना है जिसके प्रमाण हमें प्राचीन ग्रन्थों में मिलते है। विश्व में आज जो पुराने लोकतान्त्रिक देश है उन्होंने अपने यहाँ लोकतंत्र को धीरे धीरे अपनाया है। जैसे- अमेरिका में अश्वेतों और महिलाओ को वोटिंग का अधिकार जहाँ क्रमशः 1920 ई. और 1870 ई. में दिया गया था। लेकिन भारत ने अपने यहाँ शुरू से ही पूर्णरूप से लोकतंत्र को स्थापित किया है।भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही संविधान में पूर्ण रूप लोकतंत्र की स्थापना के लिए प्रावधान किए गए थे। प्रतेक भारतीय नागरिक को संविधान में लोकतान्त्रिक अधिकार दिए गए। भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। भारतीय लोकतंत्र बहुलतावाद पर आधारित है यहाँ हमे राष्ट्रिय एकीकरण के साथ-साथ हमे क्षेत्रीय विविधता के भी तत्त्व देखने को मिलते है। एकतरफ जहाँ पाकिस्तान ने अपने संविधान में खूद को इस्लामिक राष्ट्र घोषित किया, वही स्वतंत्रता के बाद से ही भारत ने अपनी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की छवि स्थापित की है। भारतीय संविधान ने भारत में लोकतंत्र की स्थापना का प्रयास किया है लेकिन अभी भी व्यावहारिक रूप में भारतीय जनता का बड़ा वर्ग सामाजिक और आर्थिक कारणों के वजह से लोकतान्त्रिक अधिकारों का उपयोग पूर्ण रूप में नहीं कर पा रहे है। सामाजिक-आर्थिक विकास के साथ साथ भारतीय लोकतंत्र भी लगातार परिपक्व हो रहा है।

## 10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

1.लोकतंत्र की अवधारणा को समझेंगे।

2.भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति को जान पाएंगे।

3.भारतीय संविधान में लोकतंत्र की विशेषताओं को जान पाएंगे।

4.भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियों को समझ पाएंगे।

## 10.2 लोकतंत्र की अवधारणा

डेमोक्रेसी ग्रीस भाषा का शब्द है जो दो शब्दों डेमोस और क्रातोस शब्द से मिलकर बना है डेमोस का अर्थ है जनता और क्रातोस का अर्थ 'सत्ता' या 'शासन'। इस तरह लोकतंत्र का अर्थ है जनता का शासन। लोकतंत्र से तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से है जिसमें शासन की संपूर्ण शक्ति देश अथवा राज्य की

जनता में निहित होती है। प्राचीन समय में लोकतंत्र की अवधारणा अप्रचलित थी।राजनीति विज्ञान के विद्वान प्लेटो भी इस अवधारणा को निरर्थक मानते थे लेकिन वर्तमान समय में यह अवधारणा सर्वाधिक प्रचलित है। आज के समय में इस शासन व्यवस्था को सर्वाधिक प्रचलित माना जाता है।

**डायसी के अनुसार**

"लोकतंत्र शासन का वह प्रकार है जिसमें शासक समुदाय संपूर्ण राष्ट्र का अपेक्षाकृत एक बड़ा भाग हो।"

**अब्राहम लिंकन के अनुसार**

"लोकतंत्र शासन वह शासन है जिसमें शासन जनता का जनता के लिए और जनता द्वारा हो।"

जनता का शासन दो प्रकार से चल सकता है एक है प्रत्यक्ष लोकतंत्र और दूसरा है प्रतिनिधि लोकतंत्र।

**प्रत्यक्ष लोकतंत्र**

जब किसी देश के मतदाताओं को यह अधिकार दिया जाए कि वह देश के शासन संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दों पर जैसे कानून,संधि,संविधान संशोधन,नीति और अन्य सार्वजनिक मामलों पर निर्णय करें, तो ऐसी शासन व्यवस्था को प्रत्यक्ष लोकतंत्र कहा जाता है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र के लिए जनमत संग्रह(Referendum)और नागरिक पहल (Citizen Initiative)महत्वपूर्ण यंत्र है ।

जनमत संग्रह के द्वारा देश के वोटर राजनीतिक,संवैधानिक या विधायी मुद्दों पर शासी संस्थाओं द्वारा लिए गए निर्णय को निरस्त कर सकते हैं तथा इन संस्थाओं द्वारा बनाए गए प्रस्तावों को या तो स्वीकार कर सकते हैं अथवा अस्वीकार कर सकते हैं।

नागरिक पहल के माध्यम से देश के वोटर महत्वपूर्ण राजनीतिक,संवैधानिक या विधायी मुद्दों पर कानून निर्माण के लिए या संविधान में महत्वपूर्ण संशोधन के लिए याचिका पर हस्ताक्षर के माध्यम से शासी संस्था को प्रस्ताव लाने अथवा कानून निर्माण के लिए बाध्य करती हैं प्रत्यक्ष लोकतंत्र के हमें कुछ उदाहरण देखने को मिलते हैं । जैसे-प्रत्यक्ष लोकतंत्र के साधनों का प्रयोग स्विट्जरलैंड में देखने को मिलता है तथा 73वें संविधान संशोधन के द्वारा ग्राम सभा के रूप में भी हमें प्रत्यक्ष लोकतंत्र देखने को मिलता है।

**प्रतिनिधि लोकतंत्र**

इस प्रकार के लोकतंत्र में कानून निर्माण एवं संविधान संशोधन में जनता सीधे रूप से प्रतिभाग नहीं करती बल्कि उसके द्वारा चुने गए प्रतिनिधि इस प्रक्रिया में प्रतिभाग करते हैं। जनता अपने द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि को चुनकर देश की संसद अथवा विधान निर्मात्री संस्था में भेजती है जो जनता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। वर्तमान समय में लोकतंत्र का सबसे प्रचलित रूप प्रतिनिधि लोकतंत्र ही है। प्रतिनिधि लोकतंत्र हमें भारत समेत अमेरिका, ब्रिटेन जैसे देशों में देखने को मिलता है।

## 10.3 भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति

भारतीय संविधान से यह प्रतीत होता है कि भारत एक संप्रभु,समाजवादी,धर्मनिरपेक्ष,लोकतांत्रिक व गणतांत्रिक राजव्यवस्था वाला देश है।वयस्क मताधिकार,नियमित चुनाव, कानून की सर्वोच्चता,न्याय एवं समता जैसे लक्षण लोकतांत्रिक व्यवस्था को प्रदर्शित करते हैं। भारतीय संविधान के अनुसार देश के समस्त नागरिकों के लिए सामाजिक,आर्थिक व राजनीतिक न्याय की व्यवस्था मौलिक अधिकार व नीति निदेशक सिद्धांतों के द्वारा की जाती है। हर व्यक्ति को मौलिक अधिकार के माध्यम से अभिव्यक्ति,विश्वास,धर्म और उपासना की स्वतंत्रता को सुरक्षित किया गया है।देश के प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के समान अवसर प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है।

भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति में उपरोक्त लक्षणों के अलावा अभिजातीय लक्षणों के साथ-साथ निरंकुशतावादी लक्षण भी देखने को मिलते हैं। भारतीय जनता का एक भाग आज भी निरक्षर है तथा एक बड़ा भाग आज भी राजनीतिक रूप से शिक्षित नहीं है। अपने मत का प्रयोग उसे कैसे करना है,अपने अधिकारों का उपयोग प्रयोग कैसे करना है तथा उसके दायित्व क्या है इसकी जानकारी तक उसे नहीं है। इस अवस्था में वह अभिजात वर्ग अथवा नेताओं के विचारों का अनुसरण करता है और उन्हीं के अनुसार अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है। स्वतंत्रता के बाद ब्रिटिश सरकार की पुरानी नीतियों एवं भू राजस्व व्यवस्थाओं जैसे स्थाई बंदोबस्त के कारण भारत का एक बड़ा वर्ग गरीब एवं भूमिहीन था। जमींदारों और साहूकारों के पास धन का संकेंद्रण एवं राजनीतिक प्रभाव था और ये लोग नए अभिजात वर्ग के रूप में उभरे। स्वतंत्रता के बाद भू- सुधार कुशल तरीके से ना होने की स्थिति में वे लोग गरीब एवं भूमिहीन ही रहे। निम्न जाति वर्ग और भूमिहीन किसान की आर्थिक निर्भरता अभिजात वर्ग(जमीदार,साहूकार) पर ही थी और उसके द्वारा ही इनको संरक्षण दिया जाता था । अतः यह स्थिति उनके राजनीतिक व्यवहार को बाधित करती है। अनुच्छेद 352 के अनुसार राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 20 तथा 21 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छोड़कर समस्त मूल अधिकारों को निलंबित कर दिया जाता है और सरकार मीडिया पर सेंसरशीप भी लगा सकती है। इस प्रकार देश

में एक सत्तावादी प्रवृत्ति देखने को मिलती है,जिसमें देश की कार्यपालिका में असीमित शक्ति का समावेश हो जाता है। सशस्त्र बल विशेष शक्ति अधिनियम(अफस्पा )जो कि वर्तमान समय में जम्मू एवं कश्मीर अथवा देश के उत्तर पूर्वी भाग के कुछ राज्यों में प्रभावी है । यह अधिनियम विशेष बलों को विशेष अधिकार देता है। सशत्र बलों पर ये आरोप लगते रहते है की इस अधिनियम के क्रियान्वयन के दौरान वे लगातार मानवाधिकारों का उल्लंघन कर रहे है इस आधार पर इस अधिनियम का काफी लंबे समय से विरोध हो रहा है। 1980 के दशक में आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां(रोकथाम)अधिनियम(TADA) एवं आतंकवादी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम का लंबे समय से अलोकतांत्रिक होने के आधार पर विरोध किया जा रहा है।

## 10.4 भारतीय संविधान में लोकतंत्र की विशेषताएं

भारतीय संविधान में लोकतंत्र की विशेषताएं निम्नलिखित है -

### प्रतिनिधि संसदीय लोकतंत्र

प्रतिनिधि लोकतंत्र को अप्रत्यक्ष लोकतंत्र भी कहते है। इस व्यवस्था में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधि,देश के लिए विधि निर्माण अथवा नीति निर्माण का कार्य करते हैं।कार्यपालिका अपने कार्यों के लिए विधायिका के प्रति जवाबदेह होती है।इस प्रकार भारत के लोग अपना प्रतिनिधि चुनकर संसद में भेजते हैं। जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने गए प्रतिनिधि लोकसभा के सदस्य होते हैं तथा देश की कार्यपालिका लोकसभा के प्रति जवाबदेह होती है।

### लोकतांत्रिक सरकारें

भारत में त्रिस्तरीय लोकतांत्रिक सरकारें है-केंद्र सरकार,राज्य सरकार एवं स्थानीय सरकार। इन तीनों ही सरकारों का गठन लोकतांत्रिक तरीके से होता है। केंद्र सरकार-सर्वोच्च न्यायालय , संसद और केंद्रीय कार्यपालिका से मिलकर बनी होती है। राज्य सरकार-उच्च न्यायालय, विधानसभा तथा राज्य कार्यपालिका से मिलकर बनी होती है।स्थानीय सरकारों को दो भागों में विभाजित किया गया है-नगरीय सरकार और ग्रामीण सरकार । नगरीय सरकार में नगर निगम,नगर पालिका और नगर पंचायत आते है। ग्रामीण सरकार के अंतर्गत ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला परिषद अथवा जिला पंचायत आता है।

### बहुदलीय व्यवस्था

प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली के लिए दलीय व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है,क्योंकि ये प्रतिनिधित्व एवं हित समूहीकरण जैसे व्यापक कार्यों को संपादित करता है।भारत एक सामाजिक विविधता से परिपूर्ण देश है अतः यहां पर हमें बहुत से दल देखने को मिलते हैं। क्षेत्रीय विविधता एवं राष्ट्रीय एकता के

आधार पर यहां पर बहुत से दलों का गठन हुआ है। भारत में निर्वाचन आयोग,निर्वाचन के आयोजन के लिए राजनीतिक दलों को पंजीकृत करता है। पंजीकरण के आधार पर दलों को तीन भागों में विभाजित किया गया है।जो कि निम्नलिखित है।

1.मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दल

2.राज्य स्तरीय दल

3.पंजीकृत गैर मान्यता प्राप्त दल

मान्यता प्राप्त दलों को आयोग द्वारा चुनाव चिन्ह का आवंटन किया जाता है।राज्य नियंत्रित टेलीविजन और रेडियो स्टेशनों में जनता को संबोधित करने अथवा अपनी बात जनता तक पहुंचाने के लिए समय का प्रबंध किया जाता है।निर्वाचन सूचियों को प्राप्त करने की सुविधा दी जाती है।मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दल को आयोग द्वारा जो चुनाव चिन्ह दिए जाते हैं वह संपूर्ण देश में उस दल के लिए आरक्षित होता है।राज्य स्तरीय पार्टी को जो चुनाव चिन्ह प्रदान किए जाता है उसका उपयोग वह केवल उन राज्यों में कर सकता है जिस राज्य में उसे मान्यता प्राप्त है।आरक्षित चुनाव चिन्ह के अलावा अन्य चुनाव चिन्हों का चुनाव पंजीकृत गैर मान्यता प्राप्त राजनितिक दल कर सकता है।[4]

**मूल अधिकार**

लोकतंत्र मुख्य रूप से सरकार और जनता के मध्य एक समझौता होता है।जिसमें जनता सरकार को यह शक्ति देती है कि सरकार उनके ऊपर शासन करें,लेकिन इसी के साथ सरकार को यह भी वादा भी करना पड़ता है कि सरकार उनके मूल अधिकारों का संरक्षण भी करेगी। भारतीय संविधान में देश की जनता के व्यक्तित्व के विकास के लिए छह मौलिक अधिकारों का उल्लेख है-

1.समता का अधिकार

2.स्वतंत्रता का अधिकार

3.शोषण के विरुद्ध अधिकार

4.धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

5.संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

6.संवैधानिक उपचारों का अधिकार[4]

**स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव**

प्रतिनिधि संसदीय लोकतंत्र में यह अत्यंत आवश्यक है कि जो जनता के प्रतिनिधि चुनकर संसद या राज्य विधानसभा में जाने वाले हैं,उनका चुनाव निष्पक्ष एवं स्वतंत्र आधार पर किया जाए। देश में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव करवाने के लिए निर्वाचन आयोग और राज्य निर्वाचन आयोग का गठन किया गया है।देश में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव करवाने के लिए चुनाव आयोग निम्नलिखित कार्य करता है।

1.चुनाव आयोग समय-समय पर वोटर लिस्ट को अपडेट करता है तथा नए वोटरों को जिनकी उम्र 18 वर्ष से ज्यादा हो गई है उनको वोटर लिस्ट में शामिल करता है।

2.चुनाव की तिथियों का निर्धारण करता है।

3.चुनाव के दौरान किसी भी प्रकार की अनियमितताओं अथवा रिगिंग,मतदान केंद्र लूटना, हिंसा की स्थिति में चुनावों को रद्द भी कर सकता है।

4.चुनाव आयोग को यदि लगता है कि वर्तमान समय में निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव करवाना संभव नहीं है तो वह चुनाव को पूरे भारत या राज्य या जिले या किसी लोकसभा या विधानसभा में स्थगित भी कर सकता है।

5.निर्वाचन के समय स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव संपन्न कराने के लिए दलों एवं उम्मीदवारों के लिए आचार संहिता का निर्माण चुनाव आयोग द्वारा किया जाता है।

6.आचार संहिता लगने के बाद प्रशासनिक अधिकारियों के ट्रांसफर करने का अधिकार भी चुनाव आयोग के पास रहता है अर्थात सत्तापक्ष अधिकारियों का ट्रांसफर नहीं कर सकती है।

**नियमित अंतराल पर चुनाव**

भारत में तीनों ही स्तरों पर अर्थात लोकसभा,राज्य विधानसभा और स्थानीय सरकारों के चुनाव नियमित रूप से 5 वर्षों के अंतराल पर संपन्न कराए जाते हैं।

**स्वतंत्र न्यायपालिका**

किसी भी लोकतंत्र में नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका अत्यंत आवश्यक होता है।भारत में न्यायपालिका,कार्यपालिका एवं विधायिका दोनों के नियंत्रण से मुक्त है। किसी लोकतांत्रिक देश में नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के साथ-साथ संविधान की व्याख्या करने के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका की आवश्यकता होती है। विधायिका द्वारा बनाए गए अधिनियम

की वैधता की जांच न्यायपालिका द्वारा की जाती है। अगर न्यायपालिका को यह लगता है कि कोई अधिनियम देश के संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप नहीं है तो उसे असंवैधानिक भी घोषित कर सकती है। सरकार द्वारा अगर कोई ऐसा कार्य किया जाता है जिससे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है तो ऐसी दशा में पीड़ित पक्ष उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत उपचार के लिए जा सकता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 और 136 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार है। इसी प्रकार अनुच्छेद 226 और 227 के अनुसार उच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। न्यायपालिका की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति नागरिक स्वतंत्रता एवं अधिकारों का संरक्षण करते हुए भारतीय लोकतंत्र को स्थापित करने का प्रयास करती है।[1]

## लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण

लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण मुख्य रूप से शासन में लोगों की सहभागिता को बढ़ाती है।शासन में लोगों की सहभागिता बढ़ाने से लोकतांत्रिक मूल्यों की वृद्धि होती है। भारत में शासन का विकेंद्रीकरण तीन स्तरों पर किया गया है केंद्रीय शासन,राज्य शासन और स्थानीय शासन। देश की अखंडता एवं एकता से संबंधित विषय केंद्र के पास है।क्षेत्रीय मुद्दों राज्य के पास हैं और 73वें एवं 74 वें संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय सरकारों की शक्तियां एवं जिम्मेदारियों को निर्धारित किया गया है।

## विधि का शासन

सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत उल्लेखित विधि के शासन को संविधान का मूलभूत तत्व माना है। विधि के शासन के अनुसार कोई भी व्यक्ति कानून के से ऊपर नहीं है। किसी भी व्यक्ति को विधि के उल्लंघन के अलावा दंडित नहीं किया जा सकता तथा संविधान व्यक्तिगत अधिकारों का परिणाम है। जिसकी व्याख्या न्यायालय द्वारा की जाती है।[4]

## स्वतंत्रता का अधिकार

भारतीय संविधान अनुच्छेद 19 में 6 अधिकारों की गारंटी दी गई है जो की निम्नलिखित है

1.वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

2.शांतिपूर्ण और निरायुध सम्मेलन का अधिकार

3.संगम या संघ बनाने का अधिकार

4.भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र आबाध संचरण का अधिकार

5.भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निर्बाध घूमने और बस जाने या निवास करने का अधिकार

6.कोई भी वृत्ति, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार l[4]

## 10.5 भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष निम्नलिखित चुनौतियाँ है -

### लिंग आधारित भेदभाव

प्राचीन काल से ही भारत में महिलाओं की स्थिति दयनीय रही है।पितृसत्तात्मक व्यवस्था के होने के कारण महिलाएं मूलभूत अधिकारों का पूर्ण रूप से उपयोग करने में असमर्थ रही हैं। लगभग आधी आबादी होने के बावजूद भी भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं का प्रतिनिधित्व आधा नहीं रहा है। स्वतंत्रता के बाद महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए बहुत से प्रयास किए गए। जैसे कुछ राज्यों में सरकारी नौकरियों में क्षैतिज आरक्षण प्रदान करना तथा स्थानीय सरकारों में 33% आरक्षण देना। केन्द्रीय विधायिका और राज्य विधायिका में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए आरक्षण की मांग लंबे समय से चल रही है। परिवारिक स्तर पर भी महिलाओं के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव किया जाता रहा है। महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन न मिलने जैसी समस्या भी देखने को मिलती है। महिलाओं के ऊपर हिंसा की घटना भी बढ़ती जा रही है। महिलाओं के ऊपर होने वाली हिंसा में बलात्कार,दहेज हत्या,भ्रूण हत्या कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न एवं छेड़छाड़ आदि अनेक प्रकार की हिंसा शामिल है। इस प्रकार की हिंसा और भेदभाव से महिलाओं के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास नहीं हो पाता है जिससे महिलाएं ना तो देश के विकास में पूर्ण रूप से भागीदारी कर पाती हैं और ना ही लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग कर पाती हैं।

### जाति व्यवस्था

भारतीय समाज में प्राचीन समय में एक जातीय स्तरीकरण की व्यवस्था विकसित हो गई है। इस व्यवस्था के अंतर्गत समाज को विभिन्न जातियों में बांटा गया,एक जाति दूसरी जाति से ऊंची या नीची होती थी। इस जातीय  स्तरीकरण के कारण विकसित हुई असमानता को दूर करने एवं शोषित और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग के कल्याण के लिए आधिकारिक रूप से समाज को 4 वर्गों में विभाजित किया गया है।जो कि निम्नलिखित हैं

1.सामान्य वर्ग

2.अन्य पिछड़ा वर्ग

3.अनुसूचित जाति

4.अनुसूचित जनजाति

अन्य पिछड़ा वर्ग के अंतर्गत वह लोग आते हैं जो सामाजिक रूप से अछूत नहीं है परंतु सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े हैं। अनुसूचित जाति के अंतर्गत वे लोग आते हैं जिनको समाजिक रूप से अछूत माना गया था। इस वर्ग के लोगों को समाज में न्यूनतम स्थिति प्राप्त थी। इनके लिए न्यूनतम कार्यों का निर्धारण किया गया था।इस वर्ग के लोगों को सामाजिक रूप से बहिष्कृत किया गया था। उन्हें ना तो मंदिर में जाने की अनुमति थी और ना ही स्कूलों में। इनको गांव से बाहर निवास करने का प्रावधान भी किया गया था। निम्न सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के कारण इस वर्ग का उस अनुपात में राजनीतिक विकास नहीं हो पाया जिस अनुपात में होना चाहिए था। ऐसी स्थिति में इस वर्ग के लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों को स्थापित करना भारतीय लोकतंत्र के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। अनुसूचित जनजाति को हम दो भागों में बांटते हैं पहला- आदिम जनजाति और दूसरा-उत्तर आदिम जनजाति। आदिम जनजाति के लोग समाज से अलग एक समाज में रहते हैं इनका जीवन आज भी प्रकृति पर निर्भर है यह लोग आधुनिक जीवन से दूर एक आदिम जीवन जीते हैं। उत्तर आदिम जनजाति में वह वर्ग आता है जो आदिम स्थिति से बाहर निकल कर विकास की मुख्यधारा में कुछ हद तक जुड़ चुका है और देश के विकासात्मक योजनाओं का लाभ उठा रहे है। सामाजिक स्थिति ही राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति का निर्धारण करती है।जाति व्यवस्था के तहत जो जातिगत स्तर बना है उसमें बदलाव संभव नहीं था। निम्न जाति का व्यक्ति चाहे जिस भी व्यवसाय को करें या कोई भी पद प्राप्त करें एक स्तर से दूसरे स्तर तक खुद को स्थानांतरित नहीं कर सकता था। भारतीय राजनीति में जातिगत राजनीति का प्रयोग लंबे समय से देखने को मिलता है जिससे समाज के अंतर्गत जातिगत अलगाव होता है और जनता प्रत्याशी की योग्यता ना देखकर जाति देखती है। जातिगत राजनीति का उद्देश्य विशेष जाति के विकासात्मक मुद्दों को उठाना एवं उनके कल्याण में वृद्धि करने तक होना चाहिए था लेकिन वर्तमान उद्देश्य तो सिर्फ सत्ता तक सीमित हो गया है।भारतीय लोकतंत्र के समक्ष ही यह एक बहुत बड़ी चुनौती है कि कैसे एक राजनीति संस्कृति विकसित की जाए जिससे कि इस समस्या का समाधान किया जाए।

**गरीबी**

एक गरीब आदमी के आर्थिक संसाधन ना के बराबर होते हैं जिससे ना तो वह अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है और ना ही अच्छी शिक्षा प्राप्त कर पाता है।ऐसे में मानव पूंजी का विकास नहीं हो पाता जिससे वह अपनी लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाता है। भारत में गरीबी के आंकड़ों की बात करें तो तेंदुलकर फार्मूले के अनुसार भारत में 21.9% लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे थे वही सी रंगराजन फार्मूले के अनुसार यह आंकड़ा 29.5% मापा गया था। इन दोनों ही फार्मूले के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि भारत की कुल जनसंख्या के एक बड़े भाग का मानव संसाधन विकास करना जरूरी है।एशियन डेवलपमेंट बैंक के द्वारा 2011 में छपी पुस्तक Understanding Poverty in India में गरीबी की समस्या को हल करने के लिए तीन संरचना तक लोगों की पहुंच बढ़ाने की बात कही गई है। जो कि निम्नलिखित है-

1.भौतिक संरचना(सड़क,बिजली और सिंचाई)

2.आर्थिक संरचना(आर्थिक सेवा)

3.सामाजिक संरचना(शिक्षा एवं स्वास्थ्य)

मानव पूंजी के निर्माण में इन तीनों संरचनाओं का अहम योगदान है।मानव पूंजी के निर्माण के साथ ही कोई लोकतंत्र और ज्यादा मजबूत हो सकता है।

**भाषागत चुनौती**

भारतीय राजनीति में देश के उत्तरी भाग में स्थित हिंदी भाषी राज्य हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाने के पक्षधर हैं एवं जो राज्य क्षेत्रीय संस्कृति एवं विविधता को बढ़ाने की बात करते हैं वे लोग हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षधर नहीं है। भारतीय संविधान के तहत हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया है लेकिन हिंदी आज तक राष्ट्रीय भाषा नहीं बन पायी है। भाषागत राजनीति का देश पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।भाषागत राजनीति के तहत 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम के तहत आंध्र प्रदेश का गठन हुआ था।1960 में बॉम्बे राज्य को मराठी और गुजराती भाषा के आधार पर अलग करके महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य का गठन हुआ।पंजाब राज्य का गठन भी पंजाबी भाषा के आधार पर किया गया। भाषाई वर्ग लगातार क्षेत्रीय भाषा के प्रचार एवं प्रसार के पक्षधर हैं। यह वर्ग हिंदी भाषा को अंतराज्यीय संचार के माध्यम के रूप में भी स्वीकार करने के पक्ष नहीं हैं। जिन राज्यों में हिंदी बोली जाती है या कुछ हद तक हिंदी भाषी लोगों की संख्या है वह राज्य हिंदी को अंतराज्यीय संचार की

भाषा बनाने के पक्ष में हैं। जिन राज्यों में हिंदी का प्रयोग ना के बराबर है वे लोग इसके पक्ष में नहीं है।भाषाई राजनीति अगर क्षेत्रीय संस्कृति एवं विविधता तक सीमित होती तो यह भारतीय राजनीति के लिए लाभप्रद था।लेकिन इसका प्रयोग क्षेत्रीय अलगाव के रूप में भी देखने को मिलता है। कुछ क्षेत्रीय पार्टी का अस्तित्व ही भाषाई राजनीति पर टिका है।ऐसे में अगर हिंदी को राष्ट्रीय भाषा घोषित कर दिया गया तो इन पार्टियों का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा।

**संप्रदायिकता**

भारत में हिंदू-मुस्लिम एकता का एक लंबा इतिहास रहा है लेकिन 1905 में अंग्रेजों द्वारा किए गए बंगाल विभाजन द्वारा इस एकता को करारा झटका झेलना पड़ा।1906 ई में हुए सांप्रदायिक पार्टी (मुस्लिम लीग) के गठन ने इस हिंदूमुस्लिम एकता को और कमजोर किया। वैसे तो 1976 से पहले भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता शब्द का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं था लेकिन भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा विद्यमान थी। धर्मनिरपेक्षता शब्द को 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा जोड़ा गया। भारत में हिंदू धर्म के लोग बहुसंख्यक हैं जिनकी जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार संपूर्ण जनसंख्या का 79.9% था इसके अलावा मुस्लिम,सिख,ईसाई,बौद्ध,जैन एवं पारसी अधिसूचित अल्पसंख्यक है। इन अल्पसंख्यक समुदायों में अपने धर्म एवं संप्रदाय के हितों के लिए बहुसंख्यक समुदाय से भय की भावना देखने को मिलती है। साम्प्रदायिकता की चरम सीमा हमें पंजाब में 1980 और 1990 के दशक में पनपी राष्ट्र विरोधी विचारधारा या कश्मीर की अलगाववादी विचारधारा में देखने को मिलता है। साम्प्रदायिकता की सकारात्मक भावना द्वारा किसी विशेष धर्म समुदाय के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए प्रयास करना और एक लोकतांत्रिक भावना का विकास करना है। लेकिन अगर सांप्रदायिकता के नाकारात्मक प्रयोग द्वारा एक विशेष धर्म के स्वार्थ को राष्ट्रिय हित से ऊपर रखा जाता है और सामाजिक प्रथकता की भावना विकसित की जाती है जो कि देश की लोकतांत्रिक छवि के लिए एक चुनौती है। यह राजनीति किसी विशेष संप्रदाय एवं धर्म के लोगों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का उपयोग केवल सत्ता प्राप्ति के लिए करती है। इस तरह समाज को कई वर्गों में विभाजित करने का कार्य किया जाता है।इस प्रकार के विभाजन से प्रशासन भी अछूता नहीं रहा है क्योंकि प्रशासनिक अधिकारी एवं कार्मिक भी समाज से ही आते हैं अतः कई बार प्रशासन पर भी यह आरोप लगा है कि प्रशासन ने बदले की भावना से कार्य किया है। संप्रदायिकता की नकारात्मक भावना भारतीय एकता एवं अखंडता के लिए चुनौती का विषय बना हुआ है। कश्मीर की अलगाववादी समस्या अभी भी बनी हुई है वही खालिस्तान की विचारधारा भी आए दिन पनपती रहती है। वक्त राजनीति में बदलाव लाने का है राजनीतिक दलों को धर्म,जाति एवं क्षेत्र के आधार पर लोगों को बांटने की नीति का त्याग करना चाहिए एवं अल्पसंख्यक समुदाय की संकावों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

**10.6 अभ्यास प्रश्न**

1.अनुच्छेद 352 के अनुसार राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान किन मूलाधिकारों को छोड़कर समस्त मूलाधिकार निलम्बित कर दिए जाते है ?

2.भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता शब्द को किस संविधान संशोधन के तहत जोड़ा गया है?

3.आंध्र प्रदेश राज्य का गठन किस वर्ष किया गया था ?

4.स्थानीय सरकारों में महिलाओं का आरक्षण कितना है ?

5.वर्तमान समय में भारतीय संविधान में मूल अधिकारों की संख्या कितनी है ?

## 10.7 सारांश

भारतीय संविधान में लोकतंत्र को स्थापित करने के लिए लोकतान्त्रिक तत्वों का समावेश किया गया है लेकिन व्यावहारिक में रूप आज भी समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी इन तत्वों का उपयोग नहीं कर रहा है। इसका मुख्य कारण लिंग आधारित भेदभाव,जाति व्यवस्था,गरीबी एवं संप्रदायिकता आदि है। स्वतंत्रता के बाद से लगातार इस दिशा में सुधार के लिए प्रयास किये जा रहे है लेकिन शासन और प्रशासन की विभिन्न कमियों की वजह से ये समस्या अभी भी विद्यमान है भारतीय एकता और विविधता को बनाये रखने के लिए साम्प्रदायिकता के नकारात्मक प्रभाओं को दूर करना अति आवश्यक है । वही क्षेत्रवाद जैसी चुनौतिओं का समाधान भी आवश्यक है । विभिन्न कानूनों और आपातकालीन स्थितियों का अलौकतांत्रिक आधार पर विभिन्न विद्वानों द्वारा विरोध किया जाता रहा है और विभिन्न विद्वानों द्वारा समर्थन भी किया जाता है। ऐसे में इन समस्याओं का हल निकलना भी भारतीय लोकतंत्र के समक्ष एक चुनौती है।

## 10.8 शब्दावली

अभिजातीय – कुलीन या अमीर

बंदोबस्त – भुगतान के लिए समझौता

## 10.9 अभ्यास प्रश्न उत्तर

1.अनुच्छेद 20 और 21 के तहत दिए गए मूलाधिकार को छोड़कर

2. 42 वे संविधान संशोधन द्वारा

3. 1956 में

4. 33 प्रतिशत

5. 6

## 10.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.सिन्हा, मनोज. 2012. समकालीन भारत एक परिचय.ब्लैक स्वान

2.गेना,सी बी.2010.तुलनात्मक राजनीति एवं राजनितिक संस्थाएं.विकास पब्लिकेशन हाउस प्रा.लि.

3.johri, j.c.2005.Comparative Politics.sterling publishers private limited

4.lakshmikant,m.2014.indian polity.mcgraw hill education(india) private limited

5.चन्द्र,बिपिन.2015.आजादी के बाद का भारत.हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली

6. https://ir.nbu.ac.in/bitstream/123456789/2815/12/12_chapter%202.pdf University of north Bengal.chapter 2.democracy in india

7. https://constitutioncenter.org/media/files/constitution.pdf.The Constitution of the united state.national constitutional center

8.bulmer,Elliot.2014.direct democracy.international idea constitution-building primer3.international idea institute for democracy and electoral assistance

9. https://na.gov.pk/uploads/documents/1549886415_632.pdf THE CONSTITUTION OF THE ISLAMIC REPUBLIC OF PAKISTAN

## 10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय लोकतंत्र की विशेषताओं का विश्लेषण कीजिये।

2.लोकतंत्र की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए,लोकतंत्र की प्रकृति का विवेचना कीजिये।